ॐ

कर्म के पथ पर

अखण्डमण्डलेश्वर
श्रीश्रीस्वामी स्वरूपानन्द परमहंस प्रणीत

— नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः —
— भिक्षायां नैव नैव च —

अयाचक आश्रम
स्वरूपानन्द स्ट्रीट, रामापुरा, बनारस से
ब्रह्मचारी स्नेहमय द्वारा
प्रकाशित।

 १९५६ ई० [मूल्य १।।)
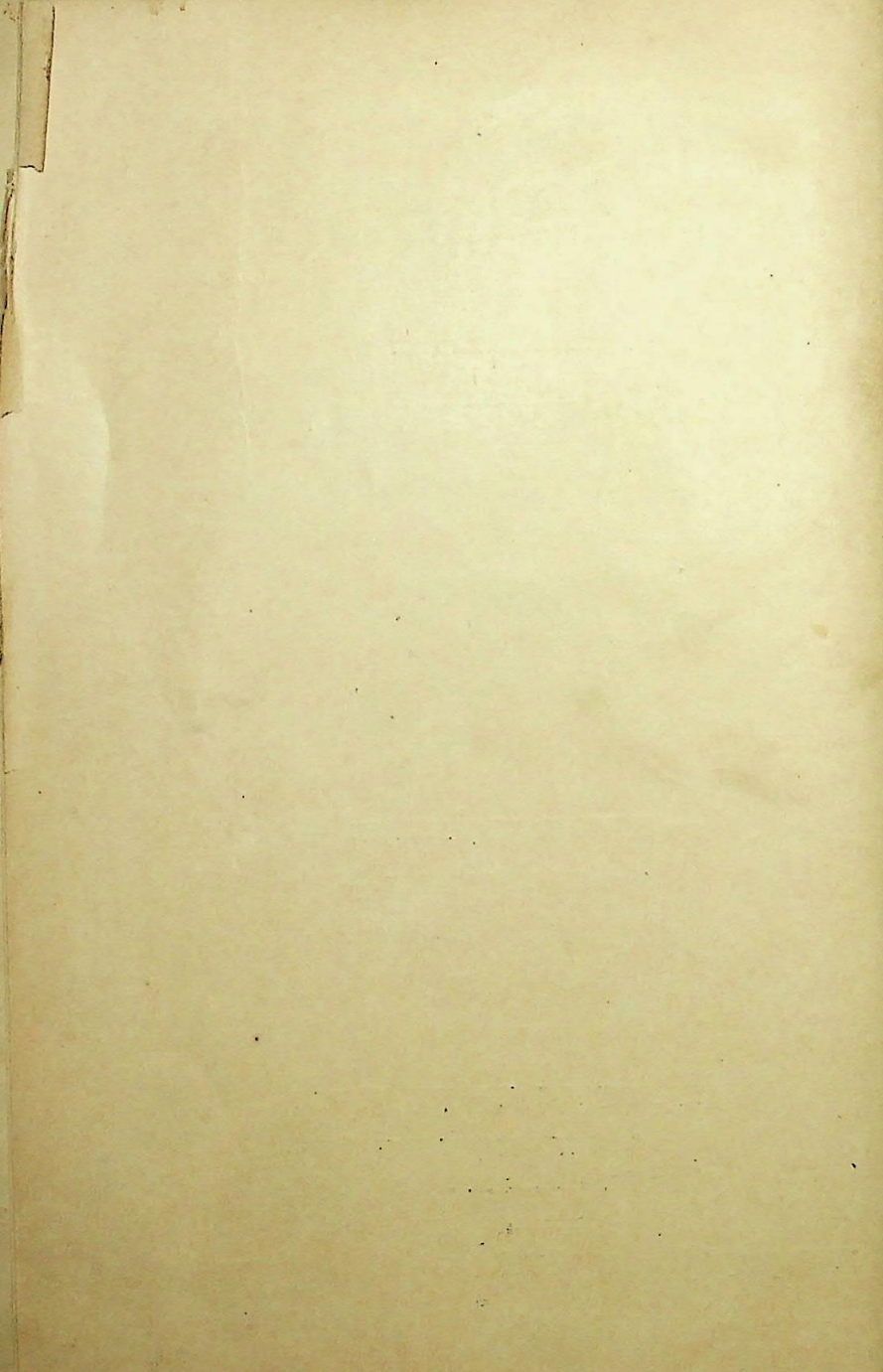
निवेदन

पूज्यपाद आचार्यप्रवर अखण्डमण्डलेश्वर श्रीश्रीस्वामी स्वरूपानन्द परमहंस देव लिखित 'छः पैसे' संस्करण की छः पुस्तिकाओं को एक में मिला कर "कर्मेर पथे" का सप्तम संस्करण प्रकाशित हुआ था। इससे पहले उक्त सभी पुस्तिकाओं के अनेक संस्करण हो चुके थे। "कर्मेर पथे" के भी छः संस्करण हुए थे। "कर्मेर पथे" श्रीश्रीबाबा के सभी ग्रन्थों का अग्रजन्मा है।

इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही देशभर में इसका महा-समादर हुआ था। उस समय के निम्नलिखित सम्मतियों से इसका कुछ आभास मिलता है :—

'प्रवासी' (बंगला मासिक पत्रिका) ने लिखा था—"अंतर की वाणी महान्, ज्वलन्त है।"

'प्रवर्तक' (बंगला मासिक पत्र) ने लिखा था—"इनकी वाणी वज्रतुल्य ओजःपूर्ण मानो मन्त्र-समान अमोघ है। नवीन कर्मी के हृदय में शक्ति-संचारक है। स्वामीजी के उपदेश महामूल्यवान् हैं।"

'उद्बोधन' (बंगला मासिक पत्र) ने लिखा था—"जातीय तपस्या में नित्य पाठ्य है।"

'मानसी ओ मर्मवाणी' (बंगला मासिक पत्रिका) ने लिखा

था—"ये जीवन्त उपदेश-वाक्य मन्त्रशक्ति की तरह कार्य करेंगे। देश के कल्याण-साधन के लिए इस दुर्दिन में सुप्त देशवासियों की प्रकृत अवस्था और चरित्र देख कर ही स्वामीजी ने ऐसी जागरण की सत्य वाणी का प्रचार किया है।"

'नायक' (बंगला दैनिक) ने लिखा था—"किस रास्ते से चलने पर मनुष्य यथार्थ मनुष्य बन सकता है, उसे स्वामीजी ने वज्रगंभीर शब्दों में व्यक्त किया है। उनकी अग्निमयी वाणी हताशाक्लिष्टों के हृदयों में विपुल उत्साह उत्पन्न करेगी।"

'हितवादी' (बंगला साप्ताहिक) ने लिखा था—"इसके पाठ से हृदय में बल-सञ्चार होता है, आत्म-विस्मृति दूर होती है।"

श्रीहट्ट की 'जनशक्ति' (बंगला साप्ताहिक) ने लिखा था—"ऐसी अर्थपूर्ण वज्रगम्भीर वाणी यथार्थ साधक के अतिरिक्त अन्य कोई सुना नहीं सकता। प्रत्येक वाक्य हृदय के मर्म-स्थान में अनुप्रविष्ट हो जाता है। जातीय उत्थान के दिनों में स्वामीजी की पुस्तकें नित्य पाठ के योग्य हैं।"

चंदन-नगर के 'नवसंघ' (बंगला साप्ताहिक) ने लिखा था—"हृदय में अङ्कित कर लेने के योग्य है।"

नदिया के 'वंगरत्न' (बंगला साप्ताहिक) ने लिखा था—"श्रीमत् स्वरूपानन्द मेरे ही श्रान्त-क्लान्त देशवासियों की मर्म-वेदना के समव्यथित तथा देश की त्रिताप-जर्जर देह में अमृत

[illegible]कारी आई हैं। उनके उपदेश उपनिषदीय वाणी के ही समान श्रद्धेय हैं।''

ऋषिकल्प दार्शनिक स्व० द्विजेन्द्र नाथ ठाकुर ने कहा था—''जो सुमहान् आदर्श प्रचारित हुआ है, उसके अनुसार चलने के अतिरिक्त देश के कल्याण का अन्य कोई पथ नहीं है।''

सुविख्यात क्रांतिकारी श्रीयुत बारीन्द्र कुमार घोष ने कहा था—''स्वामी जी के उपदेश इतने ही सुन्दर और तेजोगर्भ हैं कि उनपर अपना अभिमत प्रकट करना मैं धृष्टता समझता हूँ। हर एक बात हृदय में धारण करने के योग्य है।''

किसी समय यह ग्रन्थ सुधी समालोचकों की श्रद्धा और प्रशंसा आकृष्ट कर सका था, आज इसके सम्बन्ध में केवल इतना ही कहने से इस पर पूर्ण प्रकाश नहीं पड़ता। बंगाल के स्वतन्त्रता-प्रेमी क्रांतिकारी युवकों ने इसे गीता की भाँति नित्य पाठ्य पुस्तक के रूप में ग्रहण किया था। हमें स्पष्ट स्मरण है—एक बार 'चट्टग्राम-अस्त्रागार लुण्ठन' के अन्यतम नायक श्रीगणेशचन्द्र घोष स्वयं 'कर्मेर पथे' का एक बहुत बड़ा बंडल १३, सुकिया स्ट्रीट, कलकत्ते से चट्टग्राम ले गये थे। उसके अनन्तर हमने सुना था—उस बार वह अपने साथ प्रचुर आग्नेयास्त्र भी कलकत्ते से चट्टग्राम ले गये थे। 'कर्मेर पथे' उन दिनों आग्नेयास्त्र के समान शक्ति रखता था।

हमने स्व० दीनेशचन्द्र देव गुप्त को उनके चट्टग्राम-स्थित

'पाथरघाटा' के आश्रम में कुल मिला कर 'कर्मेर पथे' की पाँच हज़ार प्रतियाँ भेजी थीं और लोकनाथ बल, प्रीतिलता ओयादेदार तथा स्वयं सूर्यसेन ने उन्हें अपने संघ के कर्मियों में बाँटा था। प्रथम छः संस्करणों में इस ग्रन्थ की पचास हज़ार से भी अधिक प्रतियाँ प्रचारित हुई थीं।

'कर्मेर पथे' के सम्बन्ध में हमने अनेक विचित्र दृश्य देखे हैं। उनमें से एकका यहाँ वर्णन करना अप्रासंगिक न होगा। कलकत्ता आमहर्स्ट स्ट्रीट से सिटी कालेज और राममोहन राय होस्टल के समीप पूर्व की पटरी पर से कुछ आदमी खूब सट-सट कर दक्षिण से उत्तर की ओर आते दिखाई पड़े। उनके निकट आने पर विदित हुआ कि 'अनुशीलन-समिति' के नायक पुलिन बिहारी दास महाशय एक छोटी सी पुस्तिका पढ़ते हुए चल रहे हैं और उनके अनुयायी दस-बारह नवयुवक उसे सुनते हुए उन्हें अर्धवृत्त के रूप में घेर कर उनके पीछे पीछे चल रहे हैं। और भी पास आने पर स्पष्ट प्रतीत हुआ कि वह छोटी-सी पुस्तिका स्वामी स्वरूपानन्दजी की 'कर्मेर पथे' है।

इस एक ही उदाहरण को 'कर्मेर पथे' के असाधारण प्रभाव के सम्बन्ध में हम यथेष्ट समझते हैं।

विप्लवी वंगीय नवयुवक एक समय इस पुस्तिका के लिए छः पैसे से भी अधिक व्यय करने में कुंठित नहीं होते थे और आज के विश्वपूज्य अखण्डमण्डलेश्वर उन दिनों अनशनक्लिष्ट

होकर भी जठराग्नि की भीषण ज्वाला को सहते हुए चट्टग्राम, कलकत्ता, ढाका आदि नगरों के राजपथ पर उन छः पैसे संस्करण की पुस्तिकाओं के घूम-घूम कर बेचने में लज्जित नहीं हुए थे। संसार के इतिहास में स्वावलम्बन के द्वारा एक जनसेवा-मूलक प्रतिष्ठान के निर्माण के गौरव का अर्जन इसी कारण सम्भव हुआ है। 'कर्मेर पथे' नामक पुस्तिका 'अयाचक आश्रम' की आधार-शिला है।

बंगीय सन् १३२७ (१९२० ई०) के २४ श्रावण को 'कर्मेर पथे' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था। स्वयं इस पुस्तिका को रास्ते में घूम-घूम कर बेच कर क्षुधित उदर के दारुण दुःख को बलपूर्वक दबा कर भिक्षा वृत्ति ग्रहण न करके, सहायता के लिए चंदा न संग्रह कर अतिमानवीय परिश्रम से अन्त में आज एक विख्यात सुप्रतिष्ठित आश्रम की स्थापना करके श्रीश्रीस्वामीजी महाराज ने स्वावलम्बन की कीर्ति-ध्वजा रोपित कर दी है। प्रथम संस्करण में इस पुस्तिका का मूल्य था छः पैसे। जिन छोटी-छोटी पुस्तिकाओं को एकत्र करके परिवर्धित सप्तम संस्करण प्रकाशित हुआ था यथार्थ में वे पुस्तिकाएँ ही 'अयाचक आश्रम' की प्रतिष्ठा की पूँजी थी।

'कर्मेर पथे' का यह प्रकाश्य इतिहास है। परन्तु इसका तथा इसके पहले की 'छः पैसे' संस्करण की अन्यान्य पुस्तिकाओं के मूल उत्स का पता देश की साधारण जनता को नहीं है।

निवेदन

जो महापुरुष अदृश्य-पद-सञ्चारण से बहु योजन विस्तृत भारत-भूमि की आशा-आकांक्षा के आश्रय-स्थल नव-युवकों के अंतः-स्तल में विचरण कर अपनी मर्मवाणियों का प्रचार करते रहे वे साहित्यिक नहीं थे और न निबन्ध-लेखक ही। वे एक पत्र-लेखक मात्र थे। निबन्ध-रचना नहीं, साहित्य-निर्माण भी नहीं, व्यक्तिगत रूप से युवकों के हृदयों में प्रवेश कर उनके अनजान में उन्हें चिन्ता का उपकरण प्रदान करते हुए बंगाल की एक महा-संगठनी प्रचेष्टा के विप्लवात्मक सन्धिक्षण में अगणित पत्रों के द्वारा जो अभ्रान्त अमोघ अभय-वाणी चारों ओर प्रचारित हुई थी, यह उसीके क्षुद्र भग्नांशों का एक छोटा-सा संग्रह मात्र है। एक एक सुदीर्घ पत्र से दस-पाँच पंक्तियाँ ले-ले कर ही यह प्रकाशित हुआ था। एक विशाल क्षीर-समुद्र एक समय स्वामी श्रीश्रीस्वरूपानन्दजी के लेखनी-मुख से उद्भूत हुआ था। 'कर्मेर पथे' उसी के कुछ प्रक्षिप्त शीकर-कण मात्र है। दुर्भाग्य की बात है, कि वह महासमुद्र अंग्रेज-शासन के समय पुलिस के उत्पीड़न से अपने को बचाने की चेष्टा में अन्तर्हित हो गया है। विगत वंगीय सन् १३५६ में कलकत्ते में जो 'स्वरूपानन्द-जन्मोत्सव' मनाया गया था, उसकी साधारण जन-सभा में भाषण करते हुए सुप्रसिद्ध डाक्टर श्रीनीहाररंजन राय महाशय ने कहा था,—"'कर्मेर पथे' की कुछ पंक्तियाँ किसी

समय मुझे ही लिखी गयी थीं। परन्तु मूल पत्रों के संपूर्ण संग्रह का मिलना आज सम्भव नहीं है।"

पूज्यपाद ग्रन्थकार भिक्षाव्रतधारी संन्यासी नहीं हैं। देश-कर्मी के प्रशस्त ललाट पर परमुखापेक्षिता की जो अमिट कलंक-रेखा अंकित है, प्रस्तुत पुस्तक के महान् रचयिता उसके विरुद्ध जीवन भर विद्रोह की रण-वाहिनी परिचालित करते रहे हैं। किसी के द्वार पर चंदे की बहीं लेकर वे कभी घूमे नहीं हैं और न कभी उन्होंने किसी से एक पैसा भिक्षा या दान-स्वरूप ही माँगा है। तथापि मानभूम जिले के 'पुपुनकी आश्रम' के विराट भूमिखण्ड से आज जंगल अदृश्य हो गया है; कङ्कर-पत्थरों का कठिन दम्भ आज चूर्ण हो गया है। पूर्णतया स्वावलम्बन पर निर्भर रहकर ही आश्रम अपने चारों ओर अपनी बहुमुखी जन-सेवा-प्रचेष्टा का परिचालन कर रहा है। आश्रम का सनातन धर्म है—बाहुबल। इस धर्म का आश्रय लेकर ही स्वामीजी ने स्वयं और उनके सहकर्मी ब्रह्मचारियों ने वीर-विक्रम से फावड़ा-रम्भा चलाया और किसी दिन कच्चा नेनुवा-खीरा चबाकर, किसी दिन भिंडी की पत्ती सिझा कर, किसी दिन खाने के अयोग्य कड़ुए पलास-फूल की तरकारी बना कर दैनिक केवल साढ़े पाँच पैसे से क्षुधा-निवृत्ति करके 'अभिक्षा-वृत्ति' की वैजयन्ती को विजय-मण्डित करने के लिए प्राणपात परिश्रम किया है।

निवेदन

पुपुनकी आश्रम से शत-शत रोगियों को नित्य औषध दान, शत-शत कृषकों को बीज तथा फल-वृक्षों के पौधे प्रदान, मानभूम पल्ली की पथरीली भूमि को काट कर पथ-निर्माण आदि कार्य करके ही स्वामी जी महाराज के 'अभिक्षा-व्रत' की शक्ति निःशेषित नहीं हो गयी है। किसी से चंदे के लिए प्रार्थना न करके अपने ही कन्धे समस्त व्यय-भार वहन कर अपने 'वरद हस्त' ढाका, त्रिपुरा, श्रीहट्ट, काछाड़, मैमनसिंह, रंगपुर, पाबना, यशोहर, खुलना, वर्धमान, बाँकुड़ा, बरिसाल, नोआखाली, चटगाँव, वालेश्वर, कटक आदि अनेक जिलों में प्रसारित करने में समर्थ हुए हैं। श्रीश्रीस्वामी जी महाराज के अग्निगर्भ भाषणों ने अनेक तन्द्राच्छन्नों की तन्द्रा विदूरित कर दी है। नवीन वंगदेश के अभ्युदय का इतिहास दीर्घकाल तक इसका साक्ष्य देता रहेगा। जो उस इतिहास को जानना चाहते हैं वे 'अखण्ड-संहिता या श्रीश्रीस्वरूपानन्द परमहंस देव की उपदेश वाणी' नामक अनेक खण्डों में प्रकाशित महान् ग्रन्थ से बहुत कुछ विवरण जान सकते हैं। इसके दो खण्ड हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं और आगे अन्यान्य खण्ड भी क्रमशः प्रकाशित होंगे।

अयाचक आश्रम
डि० ४६।१६ए स्वरूपानन्द स्ट्रीट,
रामापुरा, बनारस।

विनीत
ब्रह्मचारिणी साधना देवी
ब्रह्मचारी स्नेहमय

दो शब्द

कर्म ही मनुष्यका जीवन है। श्रीकृष्णने अर्जुनको कर्म में ही नियुक्त किया था। संसार में निःस्वार्थ कर्मी ही श्रेष्ठतम सम्मान प्राप्त करते हैं। स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गान्धी, जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

इस पुस्तक के मूल लेखक श्रीस्वामी स्वरूपानन्द परमहंस महाराज ने प्रथम जीवन में देशमातृका की सेवा में अपना अमूल्य जीवन उत्सर्गीकृत किया था। देश-माता की पराधीनता का शृंखल-मोचन करने के लिए उस समय आप देश-भरके अगणित नवयुवकों के उद्देश्य से जो प्रेरणा-पूर्ण वाणियाँ पत्रों के रूप में प्रेषित किया करते थे वे ही कालान्तर में इस पुस्तक के रूप में परिणत हो गयी थीं।

आज भारत स्वतन्त्र है। हिन्दी राष्ट्रभाषा हो गयी है। परन्तु देश के नवयुवकों को स्वदेश-प्रेम में उद्बुद्ध करने तथा निःस्वार्थ कर्म का मार्ग प्रदर्शित करने के उपयोगी ऐसी उद्दीपना-मयी पुस्तक हिन्दी में न पाकर मैंने इसका अनुवाद किया है। इस प्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दी की कुछ सेवा कर सकने से मैं अपने को कृतार्थ समझता हूँ और आशा करता हूँ—भारत के होनहार लाखों नवयुवक इस पुस्तक की वाणियों से अनुप्राणित होकर अदम्य कर्म-प्रचेष्टा के द्वारा उन्नति के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ होने में समर्थ होंगे।

निवेदक—

गोपालचन्द्र चक्रवर्त्ती (वेदान्तशास्त्री)।

विषय-सूची

———

अखण्डमण्डलेश्वर

श्रीश्रीस्वामी स्वरूपानन्द परमहंस देव

ॐ

कर्म के पथ पर

देश क्या चाहता है ?

देश चाहता है मनुष्य। जिसका सिर वज्र के आघात से भी न झुकेगा, जिसकी तेजस्विता विभीषिका देखकर भी शिथिल न होगी, कामकलुष में जीवन-साधना का जो त्याग न करेगा—ऐसे ही मनुष्य को देश चाहता है। देश ऐसे ही मनुष्य को चाहता है—जिसका शरीर है वज्र के तुल्य, वीर्य है सिन्धु के समान अपरिमित और मनुष्यत्व है हिमवान के सदृश अभ्रभेदी। देश चाहता है ऐसे मनुष्यों को जिनकी स्वजाति-प्रीति के शान्ति-सिञ्चन से दुःख-दग्ध देश के अनन्त दुर्भाग्यों का अन्त होगा और जिनकी कर्मप्रेरणा से तुम अपने को पहचान सकोगे। देश चाहता है—जाति के आदर्श तुमको—जाग्रत तुमको—कर्मनिष्ठ तुमको—आत्मशक्ति पर पूरा भरोसा रखकर निर्भीक कर्म करने वाले तुमको। स्वदेश तुम्हारी साधना चाहता है, तुम्हारी तपस्या चाहता है और चाहता है पतितों के उद्धार-कार्य में तुम्हारा आत्मबलिदान।

नीरव कर्म

आत्मा के उद्धार में आत्मा की आहुति देनी होगी,—चर्चा-चटुल श्येन-दृष्टि से परे रहकर। घने कानन के निभृत आवरण के भीतर अपनी सहस्रों पंखुड़ियाँ खोलकर फूल खिलेगा, परन्तु अपने दिव्य सौरभ के द्वारा विश्व-वासियों के संकोच-संकीर्ण हृदयों को उल्लास-उच्छ्वास से पूर्ण कर उदार महान बना देने में वह न चुकेगा। वैसा ही गीत गाना चाहता हूँ जिसे सुनकर सुप्तिमग्न मनुष्य जाग उठेगा, मुग्ध होगा, कर्म-प्रेरणा की प्रचण्ड ताड़ना से टूटेगा, बनेगा और बाधा-विघ्नों को रौंदते हुए अग्रसर होता चलेगा, परन्तु कहाँ किस अन्तःपुर में कौन सुरीली रागिणी अलाप रही है उस पर ध्यान भी न देगा।

प्रभुत्व और दासत्व

मनुष्य मनुष्य का दास नहीं है, वह उसका स्नेहानुलिप्त कनिष्ठ है। मनुष्य मनुष्य का प्रभु नहीं है, वह उसका श्रद्धा-भिषिक्त ज्येष्ठ है। भाई-भाई में लघु-गुरु का विचार नहीं है और न है प्रभु-भृत्य का सम्बन्ध ; एक का हृदय दूसरे के हृदय को निरन्तर प्रेम के अविच्छिन्न प्लावन से आप्लुत किये रहता है।

मनुष्य का गौरव

तुम मनुष्य हो, तुम्हारा गौरवोन्नत सिर किसी के सामने

न झुकेगा। तुम मनुष्य हो, तुम्हारी अमित शक्ति किसी से पराजय का मलिन कलंक लेकर नहीं लौटेगी।

देश की सेवा

यदि चित्त चाहता है देश की सेवा, शक्ति हो या न हो, उसी में शरीर-मन सौंप दूँगा। यदि हृदय देश-माता की पूजा चाहता है तो हिमालय की तुषाराच्छन्न शैल-माला का अतिक्रमण कर नन्दन-कानन का पारिजात-कुसुम चुन लाने में किसी प्रकार की बाधा नहीं मानूँगा। यदि मन देश का काम चाहता है तो प्रवाल-मोती बटोर लाने के लिए भारत-समुद्र के खारे जल में गोता लगाने में भी न डरूँगा; परन्तु पहले ही सैकड़ों बार सोच लूँगा कि आत्मोत्सर्ग करने की सच्ची आकांक्षा मन में उत्पन्न हुई है या नहीं, अथवा वह नाम कमाने की सामयिक प्रेरणा मात्र है या नहीं। आकांक्षा हो तो बिजली-सी उज्ज्वल, परन्तु वह क्षणस्थायी न हो।

निष्कपट हो

यदि काम ही करना हो तो पुरुषों की तरह करना; यदि बात ही कहनी हो तो मनुष्यों की तरह कहना; यदि सीना उभार कर साहस के साथ हृदय की बात न कह सको तो चुप रहना। दण्ड-पुरस्कार की यदि उपेक्षा न कर सको तो काम में हाथ न डालना। बात में निष्कपट रहो और कार्य में भी।

बनावटी वीरता या दिखावटी साहस से दिग्विजय नहीं हो सकती।

आदर्श

आदर्श होगा उज्ज्वल, निष्कलंक और निर्दोष। आदर्श ऐसा होगा जिसे प्राप्त करने के लिए मृत्यु का स्वागत करने पर भी शोक न होगा, दुःख न होगा और न भय-त्रास ही हृदय को छू सकेगा।

कैसा दुःख चाहिये ?

यदि देश का काम करना ही हो तो अपने स्वार्थ को छाती में छिपाये रखने से काम नहीं चलेगा। यदि सुख प्राप्त करना ही हो तो दुःख को स्वीकार कर लेना ही पड़ेगा। परन्तु जो दुःख क्षण में आता है और क्षण में चला जाता है वह दुःख मेरे लिए नहीं है। जो दुःख बूँद भर आँसू में या एक ही लम्बी साँस में समाप्त हो जाता है वह दुःख भी मेरे योग्य नहीं है। जिस दुःख ने मानव-सभ्यता के हृदय पर भृगुपद-चिह्न अङ्कित न कर दिया वह फिर दुःख ही कैसा ? वैसे ही दुःख को अपनाऊँगा जो दो-चार जन्मों तक हृदय में घाव का चिह्न छोड़ जाय। ऐसे आघात का ही स्वागत करूँगा जो हृदय-रक्त के रक्तिम प्रवाह में विश्व-सुख की फल्गु-धारा प्रवाहित करे। मैं चाहता हूँ—सन्ध्या-मन्त्र पढ़ते समय वेद-

निष्ठ साम-ब्रह्मचारी जाह्नवी-यमुना के तीर्थ-सलिल का आह्वान न करके मेरे गौरव-दीप्त दुःख की फल्गु-धारा का ही आवाहन किया करें।

नेता कौन है ?

जो विश्व का नेतृत्व ग्रहण करेगा वह भी तुम्हारे और मेरे जैसा ही एक साधारण मनुष्य है; परन्तु केवल आत्मोत्सर्ग की प्रचंड प्रचेष्टा के द्वारा वह आत्म-प्रतिष्ठा अर्जित करेगा। पतितोद्धार जिसके जीवन का ध्येय नहीं है, जन-सेवा के यूप-काष्ठ में जिसने अपने स्वार्थ की बलि नहीं चढ़ायी है, लाञ्छित के विषण्ण आनन में—क्षुधित के दग्ध उदर में—आहत की रुधिर-धारा में जो अपने अस्तित्व को सर्वमय नहीं देखता उसे मैं नेता के रूप में कभी नहीं मानूँगा।

बाधा-विघ्नों की आवश्यकता

कोमल पदार्थ को घात-सहिष्णु बनाने के लिए उस पर बार-बार आघात देने की आवश्यकता होती है। जीवन को दृढ़ करने के लिए भी विकास-विरोधी शक्ति की आवश्यकता है। लोहा आग में जलकर फौलाद बनता है, वायु के दबाव से बालू का ढेर पत्थर बन जाता है, अत्यधिक शीत के सम्पर्क से जल फेंकने-योग्य कठिन रूप पाता है। जहाँ दबाव नहीं है वहाँ मिट्टी कड़ी कैसे होगी ? जहाँ बाधा नहीं है वहाँ जीवन ही

कैसे कार्य-क्षम होगा ? उत्थान-पतन का समाहार ही तो जीवन है और उत्थान-पतन के भीतर से ही तो जीवन विकसित होगा।

आशा की वाणी

आज का यह दुःख यथार्थ में दुःख नहीं है; बल्कि यह अनन्त सौभाग्य का उन्मुक्त द्वार-स्वरूप है। आज जो तुम्हारे क्षण-भंगुर मान-अभिमान में आघात दे रहा है, भविष्य में वही तुम्हारे अक्षय गौरव को प्रतिष्ठित करेगा। आज जो तुम्हारे निरपराध हृदय को मिथ्या कलंक के आघात से खंडित कर रहा है, वही फिर उसे अखंड गौरव से मंडित करेगा। आज जो अवसाद ला रहा है, कल वही तुम्हें आत्म-प्रसाद के आनन्द से आप्लुत कर देगा।

यथार्थ आभिजात्य

वंश-मर्यादा पर विश्वास न रखो ; कीर्तिमान् पूर्व पुरुषों का गत गौरव धूलि-विलीन वर्तमान वंशज को सम्मान नहीं देता। तुम्हारी कुलीनता अतीत को लेकर नहीं, बल्कि जीते-जागते वर्तमान को लेकर—तुम्हारे स्वावलम्बन और आत्म-प्रतिष्ठा के द्वारा। तुम्हारे जीवन का उन्नत लक्ष्य, कर्म में अविचलित निष्ठा तथा चित्त की विशाल उदारता ही तुम्हारे आभिजात्य का निर्देश देगी।

स्त्री-शिक्षा का आदर्श

ऐसे निर्दोष आदर्श से नारी जाति को गठित करना होगा

जिससे इनकी सन्तान होकर हम अपने को धन्य मान सकें और विश्व की महाप्रदर्शनी में सिर ऊँचा किये खड़े हो सकें। हम वैसी ही तेजस्विनी जननी के सन्तान-रूप से जन्म ग्रहण करना चाहते हैं, जिनकी मर्मभेदी नयन-रश्मि सभी नीचताओं को भस्म कर दे, जिनके अंगुलि-संकेत से सावन के जल की दुर्निवार गति भी रुक जाय और जिनकी चरण-रेणु के स्पर्श से महा-पातकी भी तर जाय।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा के बिना देश का दुर्दशा-मोचन होना असम्भव है। जिसमें ब्रह्मचर्य नहीं है उसके नेतृत्व में भरोसा न रखो। यदि यथार्थ में ही स्वदेश और स्वजाति के कल्याण-कामी होना चाहते हो तो अपने जीवन में संयम और ब्रह्मचर्य का अभ्यास करो और उस नियम-निष्ठा के भाव को सर्वत्र संचारित कर दो। जिसका जीवन ब्रह्मचर्य से परिपुष्ट है उसकी ही इच्छाशक्ति के प्रचण्ड प्रताप से कर्मीजनों के हृदयों में कर्मानुराग का विद्युत्प्रवाह प्रवाहित होने लगेगा।

व्यर्थ शिक्षा

जो शिक्षा आत्मसम्मान को न जगा सके वह कुशिक्षा है। जो शिक्षा स्वतन्त्र बुद्धि का विकास न कर सके वह अपूर्ण शिक्षा है। जो शिक्षा परमुखापेक्षिता न मिटा सके वह शिक्षा व्यर्थ है।

वीर कौन है ?

यथार्थ वीर वही है जो शत्रु के उद्यत अस्त्र के नीचे खड़े रहकर भी वज्र-कंठ से सत्य की ही विजय-घोषणा कर सके ; वही यथार्थ में वीर है जो अभाव के असहनीय क्लेश के भीतर रहकर भी आर्त-कल्याण के लिए अपना सब कुछ समर्पण कर सके। एकान्त में भी जिसका संयम नहीं टूटता, प्रशंसा जिसे गर्वित नहीं करती, निन्दा जिसके चित्त को विचलित नहीं कर सकती, बाधा जिसको हताश नहीं करती, वही धीर, वही वीर और वही पूज्य है।

कौन अधिक शक्तिमान है ?

सम्राट्-शक्ति प्रजा-शक्ति को नियन्त्रित करती है, परन्तु संयम-शक्ति के सामने सम्राट् को भी सिर झुकाना पड़ता है।

वीर-भोग्या वसुन्धरा

आलसी व्यक्ति ही लक्ष्मी के आविर्भाव के लिए जन्मकुण्डली में लिखित ग्रह-नक्षत्रों का मुँह ताकता रहता है। अथक कर्म-प्रचेष्टाओं के द्वारा अंग्रेज-मारवाड़ी सौदागर लक्ष्मी-लाभ करते हैं, बड़े आदमी बनते हैं और हमीं केवल फूल-पत्तियों से लक्ष्मी के पूजन में लगे रहते हैं। जिस दिन से पुरुषार्थ के स्थान पर लक्ष्मी की आराधना में फूल-पत्तियाँ घुस गयी हैं उसी दिन से माता लक्ष्मी हमें छोड़कर पुरुषार्थशील पुरुषों के प्रदेशों में प्रस्थान कर गयी हैं।

जीव-सेवा

जीव-सेवा क्या मामूली बात है भैया? काँटे गड़ने से पदतल रुधिराप्लुत हो जायेंगे, पर अधरों पर मधुर मुस्कान खिल उठेगी, तब तो! आँसुओं के साथ हँसी लहरायेगी, तब तो! असहनीय यन्त्रणा की लहरों के साथ आनन्द नाचने लगेगा, तब तो! जो सभी आनन्दों के प्रवर्तक हैं उन्हें दुःखों के भीतर से ही तो देखना चाहिये, दीनता के भीतर ही तो उनके मंगल-हस्त के कोमल स्पर्श का अनुभव करना चाहिये, तभी तो तुम्हारी जीव-सेवा, नर-नारायण की पूजा सफल होगी।

त्याग की महिमा

जो लोग सर्वत्यागी और निःस्वार्थ हैं उन्हीं की हड्डी से वज्र का निर्माण होता है। जैसे—दधीचि।

परम पिता की आशीष-वाणी

जिस देश के लोग अपने देश को प्राणों से भी अधिक चाहते हैं उसी देश पर ईश्वर का आशीर्वाद स्निग्ध धारा में उतर आता है। यदि 'स्वर्गादपि गरीयसी' जन्म-भूमि के प्रति हृदय में अकपट श्रद्धा है तो भगवत्कृपा आरती के विमल प्रकाश की तरह सारे देश में फैल जाती है। स्वदेश-प्रेमी के त्याग के प्रभाव से उनकी करुणा का सिंहासन डोलने लगता है और

सफलता के अमर स्वरूप में वह देश-वत्सल जनों को कृतार्थ करने के लिए इस मर्त्य लोक में उतर आते हैं।

अभिनय नहीं चाहिये

हम जो चाहते हैं वह ब्रह्मचर्य का 'अभिनय' नहीं है, हम चाहते हैं ब्रह्मचर्य का यथार्थ अभ्यास। यदि केवल अभिनय के द्वारा ही देश का उद्धार होता तो व्याख्यान देनेवाले लोग ही देश का उद्धार कर डालते। कपट के द्वारा ही यदि कल्याण होता तो आज भारत में छप्पन लाख गेरुआधारियों के रहते देश के लोग दुःख-दुर्दशा में न सड़ते।

भय क्या है ?

अग्नि-परीक्षा में पड़ गये हो ? क्या इसीलिए तुम्हारा जीवन यथार्थ में ही दुस्सह है ? अमृत का स्वाद पाने पर अमर हो जाऊँगा—ऐसा भरोसा जिसके मन में है, क्या वह सैकड़ों बार निडर होकर संकट-जनक काम में कूद न पड़ेगा ? माता की गोद में जा बैठ सकूँगा—ऐसा विश्वास रहने से ही तो छोटा बच्चा गिरते-पड़ते लड़खड़ाते हुए भी जननी के पास दौड़कर चला जाता है।

कैसा कर्मी चाहिये ?

मैं ऐसा कर्मी चाहता हूँ जो गाय-बैल गधे-घोड़े से भी काम ले सके, जो अकेला पुरुषार्थ करते हुए जीवन का उत्सर्ग कर सके,

इस लोक की प्रतिष्ठा की ओर ध्यान न दे, मृत्यु की परवाह न करे—वैसा कर्मी देश का गौरव और जाति का पूज्य है सही, परन्तु जो अपनी कर्माकांक्षा और कर्म-शक्ति को जड़ पत्थर के भीतर संचारित करते हुए उसे संजीवित कर सकेगा, आज मैं चाहता हूँ ऐसे ही कर्मि-कुल-चूड़ामणि महा-कर्मी को। आदर्श के चरणों में जीवन सौंप कर जो आगे-पीछे का विचार भूल गया, जिसे हिताहित का ज्ञान विस्मृत हो गया और जो हो गया हो सुख-दुःख के भेद-ज्ञान से शून्य आज मैं ऐसे ही कर्मी को चाहता हूँ। परन्तु जो अपनी अदमनीय कर्म-प्रेरणा को दसों दिशाओं में फैलाकर अलसता के अन्धकार में मोह-तन्द्रिल लक्ष-कोटि मानवों के क्षीण मेरुदण्डों में भी विपुल भार बहने का सामर्थ्य संचारित कर देगा और एक ही आदर्श की बलि-वेदी पर अगणित मानव-सन्तानों को क्रमशः आत्मदान करने के लिए जो अपनी अशरीरी इच्छा के प्रभाव से प्रबुद्ध कर सकेगा वैसे महामानव को मैं और भी अधिक चाहता हूँ। जिसके जीवन का त्याग अनागत मानव-निचय को त्याग के मार्ग पर खींच लायेगा, जिसके जीवन की सहन-शीलता आनेवाले कर्मि-व्यूह का मेरुदण्ड दृढ़ बना सकेगी, जिसका दारुण दुःख-दहन मानव-मन के सामने से मृत्यु-विभीषिका को अपसारित कर सकेगा—आज मैं उसी को चाहता हूँ। भुजाओं में वज्र की शक्ति लेकर, हृदय में असीम साहस लेकर, मन में ऋषि का संयम लेकर, विश्व के

अमंगल नाशक महायज्ञ की समाप्ति करने में जो केवल अकेला ही न आयेगा, परन्तु अबोध की स्थूल बुद्धि को कुशाग्र करके, अधोगमनोन्मुख चित्त को ऊर्ध्व-शीर्ष करके, विक्षिप्त की कर्म-प्रेरणा को केन्द्रीभूत करके, अवसाद-ग्रस्त आर्त्त की आकांक्षा को उन्नत करते हुए समस्त विश्व को आत्माहुति के महामहोत्सव में बुला लायेगा मैं चाहता हूँ वैसे ही कर्मी को।

संग्राम नित्य है

क्षणिक सफलता से ऐसा न समझो कि जीवनाकाश के सारे बादल बराबर के लिए छँट गये हैं। कितनी ही बड़ी सफलता आज क्यों न प्राप्त हो उससे महत्तर सफलता के लिए तुम्हें फिर से सन्नद्ध होना होगा, बृहत्तर बाधाओं को हटाने के लिए कटिबद्ध होना होगा, एक आँधी के झोंके से नाव को बचा लिया है, इससे अपने को कृतार्थ न समझो। उधर देखो—चारों ओर अन्धकार विकीर्ण करते हुए काले-काले बादल मँडराते हुए आ रहे हैं, अशान्त समुद्र के क्षुब्ध सलिल में प्रलय का तांडव आरम्भ हो गया है—कर्णधार, मजबूती से पतवार संभालो, आत्म-विश्वास खोकर दुर्बल की तरह रो न पड़ो, आज तुम हताश होकर पतवार छोड़ डूब न मरो, तुम्हारी ही प्रबल एकनिष्ठा आँधी के पराक्रम को पराजित करेगी, इस भरोसे पर निर्भर रहकर आज तुम वीर की तरह निडर भाव से नाव चलाये चलो तो प्रचंड पौरुष तुम्हें

बचने और बचाने का सामर्थ्य प्रदान करेगा। दल के दल यात्रियों को पार उतारने के लिए चल रहे हो, आज तुम नेता हो, आज तुम खेवनहार हो, आज तुम अपने ऊपर भरोसा न रखकर उस क्षण-कातर, क्षण-सुखी, दुर्बलेन्द्रिय, दुर्बलहृदय, भेंड़ों के झुंड की तरह विचार-बुद्धि-रहित जनता के श्रद्धाहीन जनमत का मुँह न ताको। उन्हीं लोगों के लिए तुम जीवनदान करने में कटिबद्ध हुए हो, यह बात यदि वे लोग न समझकर तुम्हें बाधा देने आवें तो भी तुम उधर ध्यान न देना। नाव चलाये चलो, बिजली की गति से चलाये चलो। प्रबल पवन-गर्जना और उत्तुंग तरंगों के आक्रमण को तुच्छ समझकर तीव्र वेग से जीर्ण तरणी को बढ़ाये ले चलो, वह दिखाई पड़ता है सुनहला देश, वज्र-विद्युत् के क्षणिक प्रकाश से वह दिखाई पड़ती है तुम्हारी प्यारी तीर-भूमि की सुनहली शोभा, वह दिखाई पड़ता है सुख-संगीत की स्वप्न-लहरियोंसे घिरा हुआ तुम्हारा चिरानन्द-निकेतन। तुम अपनी ऐकान्तिक साधना और तपस्या से प्राप्त ब्रह्मवीर्य के प्रभाव से इस टूटी नाव को डूबने से पहले जी-जान से खेते हुए वहीं ले चलो। परन्तु आँधी रुक गयी है? रुक जाय, उससे हानि-लाभ नहीं है। आँधी रुक गयी है, इसलिए तुम यह न समझो कि तुम्हें अवसर मिल गया है। स्वर्ग में जाने पर भी ओखली को धान ही कूटना पड़ता है, तुम्हें स्थिर समुद्र में भी सुस्त होकर बैठे रहने से काम न चलेगा।

बहरे हो जाओ, उपेक्षा दिखाओ

समालोचना पर बहरे हो जाओ, निन्दा पर उपेक्षा दिखाओ। अब विपुल विक्रम से, केशरी के निर्घोष से संसार को कम्पित करते हुए कर्तव्य के गहन-कठोर मार्ग पर अग्रसर होते चलो। भौंकने के लिए कुत्तों की कमी न होगी, छिद्रान्वेषण करने के लिए मूषकों का अभाव कभी न होगा, मक्खी घाव ही खोजती फिरेगी—तुम उनकी परवाह न करो, उधर ध्यान न दो, धीर चित्त से दृढ़ कदम उठाकर उत्साह के साथ सीधे अपने ध्येय की ओर बढ़ते चलो। सबको खुश करके, सबको सान्त्वना देते हुए इस संसार में कोई बड़ा काम नहीं हो सकता, होगा भी नहीं। सभी के हाथों में हाथ मिलाकर कोई रास्ता नहीं चल सकता—किसी का कान पकड़ना होगा, किसी को टाल देना होगा। जब तुम अपने स्वार्थ के पैरों तले संसार के कल्याण की बलि चढ़ाते हो, तब जिस प्रकार एक ओर से तुम्हारे विरुद्ध धिक्कार-ध्वनि उठती है, उसी प्रकार जब तुम परार्थ के चरणों में अपना सिर काट कर चढ़ा देते हो तब भी दूसरी ओर से निन्दा का प्रवाह शत-शत मुखों से प्रवाहित होने लगता है। इस संसार में निन्दा और लाञ्छना किसे नहीं मिली है? ईसामसीह के निन्दकों की कमी न थी। भगवान बुद्ध निन्दा से बचे नहीं थे। महात्मा कबीर के नाम पर निन्दा की

फुलझरी का मजा क्या चर्चा-प्रिय बाजारू आदमियों ने न लूटा ? श्री गौरांग देव की तरह निर्विरोधी प्रेमावतार भी विरोधियों की निन्दा-चर्चा से मुक्त न थे। कर्मयोगियों को छोड़ देने पर भ. जो लोग देश, राष्ट्र, जाति, वर्ण, समाज और संसार को भूलकर सभी विरोधों से परे भूमानन्द के स्वाद-ग्रहण में लवलीन हो गये थे, उन ईश्वर-कल्प महापुरुषों की भी जब अप्रशंसा का अभाव नहीं था तब निन्दा-प्रशंसा पर शुष्क तृण सी उपेक्षा दिखानी ही होगी। सम्भवतः विश्ववासियों के द्वारा अभिनन्दन-माला तुम्हारे गले में डाली जायेगी अथवा निन्दा की शूली पर चढ़ाकर तुम्हें तिल-तिल करके हतचेतन और गतजीवन कर डाला जायगा, परन्तु उसकी परवाह न करो, पीछे घूम कर न देखो, सभी बातों में बहरे हो जाओ, सभी बाधाओं पर उपेक्षा दिखाओ, आगे बढ़ते चलो, अपने जीवन की बलि चढ़ाकर संसार के लिए आदर्श स्थापित कर जाओ।

कैसी पराजय ?

प्रलोभनों के साथ लड़ते-लड़ते थक गये हो क्या ? ऐसी बात मुँह से न निकालो। तुम हार गये हो इसे स्वीकार न करो, बल्कि अकम्पित कंठ से घोषणा कर दो—मरते-मरते भी तुम जी उठोगे, गिरते-पड़ते भी तुम खड़े हो जाओगे। जीवन के फिसलाऊ पथ पर चलते हुए दो-चार बार किसके पैर

न किसले होंगे, दो-चार बार कौन न भूला-भटका होगा? अनन्त-उन्मेषशील विशाल मनुष्य-जीवन में तुच्छ दो-एक पराजयों का स्थायित्व ही कितना है? अपने ऊपर भरोसा रखो। सिर ऊँचा किये गर्व के साथ बोलो—प्रलोभन तुम्हारा गुलाम है—सङ्केत पर उठता और सङ्केत पर बैठता है। प्रलोभन तुम्हारा क्या कर सकता है? सारे शरीर में कीचड़ लग गयी है तो क्या हुआ? शरणागति के गंगा-प्रवाह में डूब कर सारा कीचड़ धो डालो। सत् साहस की आँधी बहाकर सारे सङ्कोचों और सङ्कीर्णताओं को उड़ा दो, मेरुदण्ड को सीधा रखकर खड़े हो जाओ, फिर से एक बार अपने जीवन के एकमात्र ध्येय को अच्छी तरह जाँच लो और एक बार सोच-विचार कर समझ लो—तुम कौन हो, तुम्हारा कर्तव्य क्या है, तुम्हारी जीवन-साधना की सिद्धि कैसे प्राप्त होगी? गत जीवन की दुःख देनेवाली स्मृतियों को पैरों तले रौंद डालो, उसके अनन्तर ज्वलन्त विश्वास से आत्म-निर्भर होकर, भविष्य के गौरवोज्ज्वल चित्र में विमोहित होकर पतिंगों की तरह उच्चाकांक्षा के अनल-कुण्ड में आत्मविसर्जन करो। उस अग्नि में जलते-जलते तुम्हारी सारी पराजय की कालिमा छूट जायगी, तुम तपे हुए सोने की तरह दीखने लग जाओगे, क्योंकि, युद्ध-जय ही जिसका प्रण है, मृत्यु भी उसे पराजित नहीं कर सकती।

दूसरे का मुँह न ताको

क्या अनन्त काल दूसरों का मुँह ताकते रहोगे ? तुम्हारा कठपुतली-जीवन कब खतम होगा ? हर कदम में तुमने दूसरों की ही सलाह चाही है, आपद-विपद में दूसरों की ही सहायता मांगी है, परन्तु तुम्हारे हृदय के मणिमय सिंहासन पर जो देवता अपनी प्रभा से सारे संशयों और सन्देहों का निरसन करने के लिए मौन धारण किये बहुकाल से युगयुगान्तरों से विराज-मान हैं उनसे अपनी बात को कभी पूछा था ? क्या नींव पर निर्भर न रहकर केवल छत पर ही भरोसा रखना उचित है ?

साधना चाहिये

सिद्धि लाभ करने के लिए साधना चाहिये। काँटा गड़ने का कष्ट सहे बिना कमल नहीं मिलता, खान न खोदने से रत्न अपने आप उठकर नहीं आते। साधक कह गये हैं—मुक्ति-पथ फूलों से ढँका हुआ नहीं है, वह क्षुर की धार की तरह निशित और दुर्गम है। वायु के बिना पेड़ की पत्ती भी नहीं हिलती, रास्ते की धूल भी नहीं उड़ती, प्रयत्न के बिना तुम कैसे पूर्णता प्राप्त कर सकोगे ? परिश्रम किये बिना पारिश्रमिक कैसे मिलेगा ? आलस्य का संसार में कोई पुरस्कार नहीं है।

भावुकता और भाव-प्रवणता

हल्का भाव लेकर कर्म करने से वह नष्ट हो जायगा।

सभी विफल होगा केवल भावुकता की कमी से। क्षणभर में शत शताब्दियों की अकड़ी हुई जड़ता का परिहार करके अपूर्व कर्म-नैपुण्य दिखा सकते हो, परन्तु उसे स्थायी बनाना चाहिये। तभी तो सफलता है! उत्तेजना और उत्साह का अन्धड़ बहा सकते हो, परन्तु आँधी की तरह आकर यदि वह आँधी की ही तरह चला जाय तो उससे क्या लाभ होगा? वरुण के वर्षण की तरह अविराम वाक्य-वृष्टि कर सकते हो, भूतोन्मत्त की तरह निर्भय हो सकते हो, परन्तु जिससे उस वृष्टि-धारा को निरन्तर हृदय में स्थायी रखा जा सके और वह निर्भयता दीर्घायु हो, उसी तरह प्रयत्न करना होगा। वर्षा के उद्दाम स्रावन से भागीरथी का उद्वेलित जलप्रवाह जिस प्रकार शत-शत शाखा-प्रशाखाओं के भीतर से सागर में जाकर उछल पड़ता है, उसी प्रकार पूर्ण आवेग से कार्यारम्भ कर सकते हो परन्तु शीत के अवसान से वही वेगवती नदी जिस प्रकार स्रोतोहीना और अल्पतोया हो जाती है, उसी प्रकार दो-चार दिन बीतते न बीतते क्षीणोद्यम, भग्नोत्साह और हताशाहत हो पड़ने से कैसे काम चलेगा? तुम्हारी साहसिकता और दुर्दमनीयता विश्ववासियों की दृष्टि में विस्मय का उद्रेक कर सकती हैं परन्तु उस विस्मय को अमर बनाना होगा। भूतावेश-ग्रस्त व्यक्ति के अंगविक्षेप और उछल-कूद जिस प्रकार हिताहित-विचार-वर्जित हैं, उसी प्रकार तुम भी भयानक साहस का भरोसा पाकर पंगु पदों से अनायास गिरि-

लंघन कर सकते हो, परन्तु आविष्ट व्यक्ति को छोड़कर प्रेतात्मा के चले जाने पर जैसे अत्यन्त अवसाद और आलस्य अवशिष्ट रह जाता है, वैसे ही यदि तुम्हारी प्रचण्ड प्रचेष्टा के परिणामस्वरूप रह जाय केवल हताशा, उत्साह-हीनता, आत्म-शक्ति पर अविश्वास और कर्तव्य-कार्य में घोर उदासीनता तो फल क्या हुआ ? जिस कर्म-चाञ्चल्य ने तुम्हारे अदूर अतीत को समृद्ध बनाया है यदि उसे अटूट रखा जाय तो जो भविष्य आज कल्पना से परे कुहरे के छायावरण में अस्पष्ट है, वही वास्तविकता के किरण-सम्पात से स्पष्ट और प्रत्यक्ष होगा—जो असम्भावना के गहरे गह्वर में डूबा हुआ है वही सम्भव होगा, साध्य होगा और सामने आकर खड़ा हो जायेगा। मैं उच्छ्वास की अप्रशंसा नहीं कर रहा हूँ, केवल उसकी अपूर्णता के अंश की ओर ही तुम्हारा ध्यान आकृष्ट कर रहा हूँ। उच्छ्वास भाव की परिपक्व अवस्था का लक्षण नहीं है। भाव-प्रवणता भाव की क्षण-चंचला मुखरा किशोरी मूर्ति है और भावुकता उसका परिपूर्ण लावण्य-मण्डित प्रफुल्ल यौवन।

यथार्थ कवि

बातों की कविता और नहीं चाहिये, हो सके तो काम की कविता बनाओ, जो अनन्त अनागत काल तक विश्वमानवों के उपयोग में आ सके। बातों का व्यवसाय करके बहुतों ने नाम

कमाया है, परन्तु मनुष्य का जो यथार्थ जीवन है, वह तो केवल बात ही बात नहीं न है कि, उसी के उत्कर्ष से जीवन सार्थक हो जायगा! क्या बातों का हिमालय तुम्हारे प्रज्वलित उदर-ज्वाला को बुझा सकता है? उसके लिए चाहिये भोजन, बातें नहीं, बातें नहीं। अन्धकार में प्रकाश चाहिये, बातें नहीं। देश और जाति का दुःख, दैन्य, दुर्दशा दूर करने के लिए चाहिये कर्म का कलकोलाहल, बातों का कलह नहीं। कवि अवश्य चाहिये, परन्तु उस कवि को आँखों के आँसुओं से, शरीर के पसीने से, हृदय के रक्त से, इतिहास के पन्नों पर कविता लिखकर छोड़ जाना होगा। दूसरों के दुःखों में सचमुच ही जिस की आँखों से आँसुओं की धारा न निकले, क्या उसे कवि कहोगे? नहीं, नहीं, वह कवि नहीं है। वह जालसाज हो सकता है या जादूगर, पर कवि नहीं। लाखों बाधाओं को लाँघते हुए जिसने दारुण दुःखों को न सहा, वह कवि नहीं है। जीवनादर्श को सफल बनाने में जिसने हृदय-रुधिर से पितृ-तर्पण नहीं किया, वह कवि नहीं है। समझ लो, निखिल भुवन में सभी के लिए हार्दिक सहानुभूति, लाखों विघ्नों और विपुल बाधाओं में निर्भीक श्रमबल, बहुजन-हित और बहुजन-सुख के लिए नीरव आत्माहुति ही काव्य के प्राण हैं।

सार्थक दुःख

दुःख हम जीवन में अनेक सहते हैं, परन्तु यदि हम उतना

ही दुःख एक महान् आदर्श को प्राप्त करने के लिए स्वेच्छा से सहन करें तो जीवन सार्थक हो सकता है।

आघात का प्रतिघात

दूसरों को जिसने दुःख दिया है वह अपने दुःख से रोयेगा। दूसरों को अपमानित करते हुए जो आनन्द से उत्फुल्ल हुआ है, वैसा ही अपमान सहस्त्रगुणा होकर उसी के सामने लौट न आयेगा, ऐसा न सोचो।

सङ्घ

दसों का विविध वैचित्र्य किसी साधारण भित्ति पर स्थापित होकर शत मंजुलताओं से सुन्दर होकर एक संघ संगठित होता है। दसों का विविध सामर्थ्य एक ही साधारण लक्ष्य में प्रयुक्त होकर दशभुजा दुर्गा के दीप्त शायक में परिणत हो जाता है और दीनता को दलित कर, हीनता को छिन्न-विच्छिन्न कर संघ के भीतर प्राण-शक्ति को आमन्त्रित करता है।

भ्रातृत्व का जागरण

भाई-भाई में भ्रातृत्व के अमर सम्बन्ध को अस्वीकृत करने से काम नहीं चलेगा। कहना होगा—"कौन कहाँ हो दुर्बल, कातर, हताश, आओ, मेरी भुजाओं की छाया में आकर खड़े हो जाओ, सब प्रकार के अत्याचारों से मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा, कौन कहाँ हो पतित, दलित, अछूत, दौड़कर मेरे पास आ

जाओ, मैं तुम्हें सिरमौर बनाऊँगा।" जननी-जाति से हाथ जोड़कर कहना होगा—"दूध पिलाते समय इस क्षीण-प्राण जाति को भ्रातृ-प्रीति का अमृत पिलाती जाओ माता, अपनी भाव-साधना की शक्ति को इनके भीतर सञ्चारित करने में कृपणता न करो।"

आत्म-पूजा

हम केवल उन्हीं का मुँह ताकते रहते हैं, जिनका कंठ है मुक्त, किन्तु अपना कंठ बराबर रुद्ध ही रखते हैं। हम प्रतीक्षा में रहते हैं कि, कब कौन जुगनूँ या चन्द्रमा आकर अमानिशि का अन्ध तमस दूर कर देगा, परन्तु साधना की सलाई से अपने जीवन के ईन्धन में अग्नि उत्पादन करना नहीं चाहते। अपनी शक्ति और अपने सामर्थ्य को विस्मरण के उस पार रखकर हम दूसरे की पूजा करने जाते हैं, माया-मरीचिका में प्रलुब्ध होकर पूजा की पिपासा खुशामद से ही बुझाते हैं। परन्तु भारत आज जो पूजा चाहता है, वह दूसरे की उपासना नहीं, अपनी उपासना—आत्म-पूजा। दुर्जय कर्म-प्रचेष्टा के प्रोज्ज्वल पञ्चप्रदीप और ऊर्ध्व-सञ्चारी यशोधूप के सुगन्धित धूम के द्वारा ही आत्म-पूज़ा की अपूर्व आरती करनी होगी, नहीं तो विश्ववासियों का दुःख दूर करने वाले महामहोत्सव में आनन्द न जमेगा।

कर्म-रहस्य

देश की सेवा के माने चिल्लपों, शोरगुल नहीं है। देश की सेवा का अर्थ है अकपट कार्य। निष्कपट होकर काम करते हुए यदि बात करनी ही हो तो करो, उसमें दोष नहीं है; किन्तु केवल बात के लिए ही बात न करो, बात को काम में सहायक बनाओ। जोश में आकर काम करके नाम पैदा कर सकते हो, पर उससे काम न होगा। अतः केवल आवेश से प्रमत्त न होना। अगर यह समझ में आ जाय कि आवेश तुम्हारे काम में सहायता दे रहा है तो निस्सङ्कोच उसका यथासम्भव उपयोग करो, किन्तु बात की बाढ़ में बहते न चले जाओ। गोता लगाओ, पर डूब न जाओ।

दुःख

जो विश्वमानवों का दुःख मिटायेंगे, उन्हें अपने सैकड़ों दुःख-कष्टों में अम्लान रहना होगा। दूसरे के आँसू पोंछने के लिए अपना आँसू रोक रखना होगा। दूसरे के मुख पर हँसी उत्पन्न करने के लिए अपनी वेदना के विलास में भी हँसना होगा।

दुःख को सिर चढ़ाकर ही हम उसकी महत्ता बढ़ा देते हैं, नहीं तो साहसी वीर के पैरों तले दबकर क्या वह मणि-मुक्ता की तरह चमकना नहीं जानता ?

जब हम रास्ता भूलकर भटकने लगते हैं तब दुःख ही

आघात पर आघात देकर हमारी सुप्त चेतना को उद्बुद्ध कर देता है और रास्ता बतलाता है।

जहाँ देखोगे दुःख है, वहीं जान लेना कि उसकी आड़ में एक विराट गौरव भी छिपा हुआ है।

'सुख' 'सुख' कहकर रोने से ही सुख नहीं मिलेगा। दुःख को जबतक तुम अंग का आभूषण न बना लोगे तबतक सुख का स्वाद कैसे मिलेगा? अन्धकार में ही दीपक जलाया जाता है, दिन के प्रकाश में नहीं।

प्रतिष्ठा का प्रकृत पथ

तुमने केवल अपने को ही चाहा था, इसलिए दूसरों ने तुम्हें नहीं चाहा। तुम्हारे स्वार्थ और तुम्हारी व्यक्तिगत भेद-बुद्धि ने ही तुम्हें विश्व के मर्मस्थान से बहुत दूर हटा रखा है। जबतक तुम अपने को लेकर तन्मय रहते हो तबतक विश्व को अपनाना नहीं चाहते या अपना नहीं सकते। परन्तु जैसे ही अपने को तुमने स्वार्थ से वञ्चित, लोभ से रहित और वासना से मुक्त कर लिया वैसे ही विश्व की मर्मवेदना तथा हर्ष आनन्द एकसाथ आकर तुम्हें लिपट लेते हैं। जबतक प्रतिष्ठा की आकांक्षा है तबतक वह नहीं मिलती, किन्तु उसे छोड़ देते ही प्रतिष्ठा-प्रख्याति देव-पूजन की अञ्जलि के फूलों की भाँति अपने-आप आकर ढेर लगा देती है।

परिचय-पत्र

अपने ही हृदय-राज्य में सत् और महत् रूप से जिसका प्रचार हो गया है, संसार के राजा के शासित राज्य में परिचय की अपेक्षा उसे नहीं है।

त्याग और भोग

जो कुछ अपने पास नहीं है, उसे अपनी शक्ति से ही प्राप्त करना होगा और जो कुछ अपने पास है या होगा, उसका दूसरों के लिए त्याग करना होगा।

आदर्श का महत्त्व

अपना बड़प्पन प्रचारित करने में व्यग्र न हो,—अपने आदर्श को बड़ा बनाओ और उस महान् आदर्श से अनुप्राणित होकर निष्कपट भाव से आत्मोत्सर्ग करो। देख लेना, थोड़े ही दिनों में महत्त्व आकर तुम्हारी चरण-धूल में लोटने लगेगा।

जीवित की तरह जीओ

क्या केवल जीवित रहने के लिए ही जीवित रहना होगा? अगर जीवित रहना ही हो, तो मनुष्य की तरह जीओ। पशुपक्षी भी तो जीवित रहते हैं! वृक्ष-लताएँ भी तो जीवन धारण करती हैं! वाताहत लतिका की तरह जीवन-धारण किस महत्त्व का? मनुष्य होकर जन्मे हो, क्या तुम पशु की तरह जीवन बिताकर ही तृप्त होगे? कर्म के प्रयास-स्पन्दन से यदि ब्रह्माण्ड को थर्रा न दे

सको, सत्य के वज्रपात से मिथ्या के आडम्बर दर्प-दम्भ को यदि क्षण भर में अन्धड़ के द्वारा उड़ा न सको, प्राणमय स्पर्द्धा के सावन से यदि दीनता और हीनता को डुबो न दे सको, तो तुम्हारे जीवन-दीपक के जलने या न जलने से क्या लाभ ?

त्यागी और मृत्यु

सांसारिक ऐश्वर्य और यश-मान की कामना पर लात मार-कर जो विश्व-कल्याण में आत्माहुति देने को कृतनिश्चय हैं, मृत्यु उन्हें भयभीत नहीं कर सकती ; जीवन के पर्दे ने संसार की सेवा के अधिकार से उन्हें वञ्चित कर दिया, इसी की चिन्ता उन्हें मर्म-पीड़ा देती है । देह के ध्वंस पर उन्हें आपत्ति नहीं है, क्योंकि देह के सुख का उन्हें लोभ नहीं है और न देह पर उन्हें आसक्ति ही है । किसी भी क्षण, किसी भी अवस्था में मृत्यु का आलिंगन करने में उन्हें तिल मात्र भी असम्मति नहीं है, तथापि वह यदि दीर्घ जीवन पाना चाहते हैं, तो उसका कारण है जगत् की सेवा में दीर्घतर सुयोग प्राप्ति का लोभ । विचार करने से यह भी एक दुर्बलता ही है, परन्तु निष्पाप और निष्काम कर्मयोगी की इतनी-सी दुर्बलता क्षमा के एकान्त अयोग्य नहीं है ।

उपासना

भ्रातः ! आँख मूँदकर चुपचाप बैठे रहने से ही उपासना हो जाती है, ऐसा नहीं। प्रति अंग जबतक भगवान् के ही काम के

लिए व्याकुल होकर रोने न लग जायगा, तबतक तुम्हें उपासना का अधिकार ही क्या है ? शिथिलता में उपासना नहीं है, है जीवन्त कर्म में। विश्वास रखो, तुम्हारा कर्म-जीवन ही भगवच्चरणों में सुवासित पुष्पों का अर्घ्य है। जान लो, तुम्हारी हरएक उज्ज्वल चिन्ता उनकी आरती का अमर आलोक है। पड़ोसी के दुःखमोचन के लिए यदि तुमने एक भी बात कही हो, तो उसी से तुम्हारी उपासना हुई है। स्वदेश के अधःपतन की चिन्ता से यदि तुमने एकान्त में एक बूँद आँसू भी गिराया हो, तो उसी से तुम्हारी उपासना हुई है। पहाड़ के समान विघ्न-बाधाओं को अनायास लाँघकर जो उत्साही युवक बड़ा होना चाहता है, यदि उसके मार्ग के एक तुच्छ तृण को भी तुमने हटा दिया हो तो तुम्हारा जीवन उपासना के ऊषारुण से उज्ज्वल हो गया है। क्या तुमने कभी दूसरों को प्यार किया है ? अपने को भूलकर, अपने मुख का कौर कभी किसी भूखे के हाथ में दे दिया है ? क्या कभी अपना जीवन विपन्न करके भी किसी छाग-शिशु को गाड़ी के नीचे दबने से बचाया है ? यदि ऐसे ऐसे काम किये हों, तो तुम्हें उपासना की आवश्यकता ही क्या है ? निश्चिन्त रहो भाई, जन्म-जन्म तप करने पर भी जो प्राप्त नहीं की जा सकतीं, वही जगज्जननी तुम्हें गोदी में उठा लेने के लिए स्वयं ही दौड़ती हुई आ रही हैं।

तैयार हो जाओ

जनमते ही रोकर जिस प्राणवायु को साँस के रूप में खींच लिया था, किसी दिन जब उसे लौटा देना ही होगा, तो हम हँसते हुए उसे दे सकें, उसीके लिए हमें प्रतिक्षण तैयार होना ही होगा। जिस प्राण के पाते समय हम रो पड़े थे, उस प्राण को छोड़ते समय अक्षम के व्याकुल रुदन से दिङ्मण्डल को गुँजा न दें—जिस प्राण को देने के लिए पाया था, उसे देश और जगत् के कल्याण-कार्य में सौंपने में फिर से मिथ्या ममत्व में मोहमुग्ध होकर अवसाद और आत्म-अविश्वास से आच्छन्न न हो पड़ें, उसी के लिए प्रतिक्षण हमें साहस और पौरुष का संचय करते रहना चाहिये। हमारे श्वास-प्रश्वास कभी धीरे और कभी हुंकार के साथ प्रवाहित हो रहे हैं, क्या वे हमें प्रतिक्षण यह महावाणी नहीं सुना रहे हैं कि—"तैयार हो जाओ ?" वह जो हृत्पिण्ड कभी अति धीरे और कभी अति द्रुत स्पन्दित हो रहा है, क्या वह भी हमें एकही आज्ञा नहीं दे रहा है कि, "तैयार हो जाओ ?" मानो वे कह रहे हैं—"मानव तैयार हो जाओ, निडर होकर मृत्यु का वरण करके महामानव होने के लिए तैयार हो जाओ, सार्थक मृत्यु प्राप्त कर अमर जीवन पाने के लिए तैयार हो जाओ।"

क्या चाहिये ?

नहीं—निष्क्रिय जीवन, चाहिये—कर्म का आह्वान ;

नहीं—अनिच्छुक यत्न, चाहिये—श्रम का तूफान ।
नहीं—सन्दिग्ध चित्त, चाहिये—अबाध्य प्रेरणा ;
नहीं—मधुच्छन्दी बात, चाहिये—यथार्थ वेदना ।
नहीं—स्वप्न का विलास, चाहिये—सत्य का साधन ;
नहीं—विक्षिप्त वियोग, चाहिये—योग-युक्त मन ।
नहीं—मनीषी की मेधा, चाहिये—मनस्वी का मत ;
नहीं—मृत शास्त्र-वाणी, चाहिये—नित्य सत्य पथ ।

प्रधान शत्रु

व्यापक रूप से वृथा वीर्यक्षय प्रतिरुद्ध होने से, वंश-परम्परा से संयम की साधना सुप्रतिष्ठित होने से, दुःख कहो, दारिद्र्य कहो, पराधीनता कहो, शक्तिहीनता कहो, उद्यमराहित्य कहो और व्याधिप्रवणता ही कहो—सभी कटाक्ष के इंगित से दूर हो जायेंगे। वीर्यक्षय ही आज हमारा प्रधानतम शत्रु है और ब्रह्मचर्य,—एकमात्र ब्रह्मचर्य—ही हमारे उद्धार का बीजमन्त्र है। मलेरिया नहीं, प्लेग नहीं, केवल मात्र अवैध वीर्य-क्षय ही हमारा प्रचण्डतम शत्रु है।

वर्तमान का भविष्यत्

मनुष्य वर्तमान में ही जीना चाहता है, परन्तु वर्तमान के लिए ही नहीं। समय आयेगा, जबकि उसके समस्त जीवन के प्राण-पण परिश्रम की सफलता का पता पाया जायगा ;

परन्तु आज ही नहीं। दिन आयेगा, जबकि उसकी क्षीणतम चिन्ता भी भविष्य युग की सभ्यता के ऊपर रेखा अङ्कित बिना किये न रहेगी। समय आयेगा, जबकि उसकी छोटी-बड़ी सभी बातें तथा काम कोलाहल करते हुए अपने यथायोग्य स्थान का दावा करेंगे। मनुष्य ठीक उसी दिन प्राणान्त करके भी प्राण पाता है, क्लान्त होकर भी सजीव हो जाता है।

भिक्षा न माँगो

मनुष्य को मनुष्य ही रहना होगा, अपने ही पैरों खड़ा होना होगा, दूसरों की कृपा-भिक्षा पर नहीं। इसे कभी न भूलो,—भिक्षा से आत्मा की शक्ति घट जाती है, कर्म-प्रचेष्टा मन्द पड़ जाती है। याद रखो,—भिक्षा से स्वर्ग नहीं मिलता, स्वर्ग मिलता है वीरता से। परन्तु भिक्षासे मिलती है पशुता, हीनता, नीचता और अमिट कलङ्क-कालिमा। यदि यथार्थ मनुष्य की तरह जीना चाहते हो, तो जगन्माता की शरण लेकर सीना उभाड़ कर खड़े हो जाओ। प्रतिज्ञा करो—"संसार का मैं भोग करूंगा, परन्तु किसी के अनुग्रह से नहीं, अपनी भुजाओं के बल पर!" भगवान् ने तुम्हें मनुष्य ही बनाया है, किस प्रयोजन से तुम अपने को अमानुष बनाओगे? यह संसार तुम्हारा ही है, तो किससे भिक्षा माँगते फिरोगे?

आत्म-परिचय

अपने अन्तर-पुरुष का यथार्थ परिचय अभी हमें मिला

नहीं है। यदि मिला होता तो धन-गर्वित, विलासी, व्यसनासक्त व्यक्ति के मुख से स्वदेश-प्रेम या विश्व-प्रीति की बात सुनकर हम न भटकते फिरते। यदि हम जानते कि, कौन देवता हमारे अन्तर और बाहर के प्रत्येक परिवर्तन के भीतर से अपनेको प्रतिक्षण अभिव्यक्त कर रहे हैं, तो बाहरी विलास-लीला में राजवेश पहनकर हम भिक्षुक बनना नहीं चाहते। यदि हम अपने को पहचानते, तो दूसरों को गोदी में भी उठा ले सकते या पैरों तले कुचल भी सकते, परन्तु बिना विचारे अन्धे की तरह किसी के इशारे से न उठते और न बैठते।

पाखण्डपन

यदि जीना ही चाहते हो भाई, तो मृत्यु से डरने से काम न चलेगा। किसी सहायहीना नारी का मरणाधिक दुःख आँखों के सामने देखकर भी क्या जीवन को बचाना ही होगा? एक नाशवान जीवनपर इतनी अनुचित ममता क्यों? अपना अपमान अपमान नहीं है, इसीसे उसे सह सकता हूँ; परन्तु जहाँ प्राणों से प्रियतम, जीवन के भी जीवन रूप व्यक्ति अपमानित हो रहे हैं, मेरी ही माता, मेरी ही कन्या, मेरी ही भगिनी का सर्वनाश हो रहा है, वहाँ भी यदि हम 'क्षमा महत्त्व का लक्षण है' कहकर निश्चेष्ट रह जाते हैं, तो उससे बढ़कर मानसिक पतन और क्या हो सकता है? जिस नारी को महाशक्ति कहकर व्याख्यान-मंच

प्रतिध्वनित कर दिया करते हो, उसी नारी के ऊपर दुष्टों का अत्याचार देखकर भी समाज या शासन के भय से उदासीन रहने की अपेक्षा पाखण्डपन और क्या हो सकता है ?

मनुष्य का यथार्थ रूप

कितना ही तिमिराच्छन्न क्यों न हो, मनुष्य प्रकाश का ही पुत्र है ; कितना ही अवसन्न क्यों न हो, वह सबलता का ही उत्तराधिकारी है।

आकांक्षा की आरती

निर्वाण मुक्ति लाभ करने के लिए कृच्छ्र साधन का प्रयोजन नहीं है। कर सको तो आकांक्षा की आरती उतारते समय अपना सर्वस्व सौंप दो। उदर की अग्नि भभक उठे, पर देखना, समस्त विश्व को ग्रास करने के पहले ही वह बुझ न जाय। मुट्ठीभर तण्डुल-कणों में तुष्ट न रहो, क्षीर का सागर चाहिये, मलाई का पहाड़ चाहिये, बिगलित नवनीत का सरित्-प्रवाह चाहिये।

इह लोक की अमरता

हमारा जीवन इतिहास का जीवन हो, हमारा इतिहास जीवन का ही इतिहास हो।

भारत का जातीय शत्रु

इसे न भूलो कि, आलस्य ही भारत का जातीय शत्रु है।

उद्यम-हीनता ही भारत की उन्नति-कल्प-लतिका की जड़ काटने वाली निर्दयी कुल्हाड़ी है।

जीवन का मूल्य

आदर्श के चरणों में यदि न्योछावर ही न हुआ तो उस जीवन का मूल्य ही क्या? जिसे श्रेष्ठ समझ लिया है, उसे प्राप्त करने के लिए स्वार्थ का मुँह नहीं देखूँगा, तब तो मैं मनुष्य हूँ!

कापुरुष नहीं हूँ

जो कुछ सहज-लभ्य है, यदि उसी में सन्तुष्ट रह गया तो मैं घोर कापुरुष हूँ! दुःख है, इसीलिए तो सत्य को चाहता हूँ। लाञ्छना है, इसीलिए तो सिद्धि को चाहता हूँ। हलाहल विष उत्पन्न होगा जानकर भी समुद्र-मन्थन में प्रवृत्त हुआ हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि चिर आकांक्षित अमृत अनेक साधनाओं—अनेक वेदनाओं—के पश्चात् मिलता है।

दुःख नहीं है

पुरुष के लिए दुःख क्या है? मनुष्य की सन्तान आघात पर क्यों रोयेगी? मलय-वायु से वेतस-पत्र की तरह जो लोग काँपते हैं, वेही विगत दिनों की बातें कह-कह कर रोते रहें; परन्तु तुम्हारे रोने से काम न चलेगा, काँपने से भी काम न चलेगा। दुःख यदि तुम्हारे अंग से लगकर दस हाथ दूर छिटक न पड़ा

तो तुम्हारी आशा-आकांक्षा और चेष्टा-उद्यम की सार्थकता ही क्या है ? मृगी की तरह मृत्यु एक मानसिक व्याधि है, दुःख उसकी कल्पित छाया है। एक छाया देखकर चौंक उठोगे ? भयभीत होकर पीछे हट जाओगे ? इतने कायर तुम ? हुंकार सुनकर क्या तुम भी हुंकार नहीं कर सकते ? क्या तुम भी विभीषिका को भय नहीं दिखा सकते ?

दुःख नहीं है। मेरे लिए नहीं है, तुम्हारे लिए नहीं है, जो लोग लेशमात्र भी देश का काम करना चाहते हैं, उनमें किसी के लिए भी नहीं है। कपूर की तरह वह चिरकाल के लिए काफूर हो गया है। समुद्र से खींची हुई वाष्प-राशि वृष्टि के रूप में फिर धरती पर लौट आती है, पर दुःख फिर न आयेगा। हमारे लिए मृत्यु नहीं है ; रुदन, दुःख-वेदना, विषाद-यातना कुछ भी हमारे लिए नहीं है ; हमारे लिए हैं—स्वदेश और स्वजाति के कल्याण-कार्य में युग-युग प्राणपण परिश्रम और अतुलनीय आत्मत्याग।

मनुष्य जब दुःख का मोह-बन्धन तोड़ डालता है, तब दुःख आता है देवता की भाँति ज्योतिर्मय होकर, अपने हाथों वर-माला लेकर। मनुष्य जब दुःख के सिर पर सौ लात मारकर सीना उभार कर खड़ा हो जाता है तब दुःख आता है, उस लात को सिर धरकर कृतार्थ होने के लिए। यथार्थ में ही जब 'मनुष्य' की लात उसके सिर पर जोर से आ गिरती है, तब वह वसन्त

के सुवासित पुष्पों की भाँति आँगन में खिल उठता है, पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह प्रतिजन-नयनों में हँसने लगता है। उस समय क्या वह दुःख रहता है ? नहीं, उस समय वह स्पर्शमणि है। जिसे वह छू जाता है, उसे हर्ष भी दे जाता है ; जिसकी छाती पर गहरी साँस छोड़ जाता है उसके जन्म-जन्मान्तर की पिपासा भी मिटा देता है।

दुःख से हम न डरें, उसकी परवाह न करें, उस पर लात ही मारकर हम चलते जायँ। नहीं तो देश का दुःख नहीं मिटेगा, कोटि कंठों का करुण क्रन्दन न रुकेगा, अमृत के देश से मृत्यु-यातना भी निर्मूल न होगी।

विपत्ति का प्रयोजन है

विपत्ति ही मनुष्य को बड़ा बना देती है। उसके सारे जीवन की शिक्षा, संस्कार और साधना का ऐसा योग्य परीक्षक और कोई नहीं है। कसौटी में कसकर विपत्ति ही तुम्हारी योग्यता का परिचय करा देती है, जीवन-संग्राम में विपत्ति ही तुम्हारी विजय-वार्ता घोषित कर देती है। विपत्ति के पत्थर एक पर एक रखकर जो विशाल, विस्तृत मन्दिर निर्मित किया जाता है उसी में कीर्ति-देवता की प्रतिष्ठा होती है।

अव्यर्थ जीवन

हमारा जीवन व्यर्थ हो जाने के लिए नहीं है। हमारे प्राणों

का हरएक स्पन्दन विद्युत्-शक्ति की तरह लाखों हृदयों में प्रभाव पैदा करेगा, इसीलिए तो हम उत्पन्न हुए हैं। लोग हमारी अवज्ञा करें, उपेक्षा करें, परन्तु वह अवज्ञा और उपेक्षा उन्हीं के अंगों से बहकर गिरेगी। परन्तु यदि हम उसकी परवाह न करें तो हमारे जीवन की सार्थकता अव्यर्थ ही रह जायेगी।

छोटा और बड़ा

जब हम बड़े हों, तब छोटे-बड़े के भेद को और भी न बढ़ा डालें।

दुर्गति का निदान

मनुष्य-मनुष्य में भ्रातृत्व का जो प्रेम-पवित्र मधुर सम्बन्ध है, उसे स्वीकृत और गौरवित करने से ही हमारी दीनता मिटेगी। हमारा दुःख केवल विक्षिप्तता का दुःख, सहायहीनता का दुःख, बन्धुहीनता का दुःख तथा भाई को भाई न समझने का दुःख है। हम जो घर के कोने में बैठकर खेद के कारण रोते हैं, वह तो तुम्हारे-हमारे में परिचय नहीं है—इसीलिए। मनुष्य यदि मनुष्य को पहचाने, यदि वह अपना हृदय देकर दूसरों के हृदय को अपना सके तो संसार स्वर्ग हो जाय।

दल या बल ?

मनुष्यत्व ही मनुष्य का श्रेष्ठ गौरव है। संघ कहो, दल कहो या सम्प्रदाय कहो, सभी इस मनुष्यत्व के विकास के लिए

ही परिकल्पित हैं। यदि दल गठित करने से मनुष्यत्व घट जाय तो दल छोड़ देना ही उचित है। दूसरी ओर दल गठित न करने से यदि मनुष्यत्व के विकास में रुकावट उत्पन्न होने लगे, तो दल गठित करना ही उचित है। बल-वृद्धि ही प्रधान लक्ष्य है। दल-गठन से यदि बल बढ़े तो दल ही अच्छा है। दल-गठन से यदि बल घटे तो दल अग्राह्य है। तुम्हें पहले मनुष्य हो लेना होगा, आत्मसंगठन की चेष्टा को अन्य सब प्रकार की चेष्टाओं के सामने स्थान देना होगा और जो कुछ तुम्हारे आत्मसंगठन के अनुकूल हो, उसका सादर ग्रहण करके, जो कुछ प्रतिकूल हो, उसका निर्दयी की तरह त्याग करना होगा।

व्यष्टि और समष्टि

हरएक मनुष्य जहाँ छोटा ही रह गया, देश या समाज वहाँ बड़ा होगा किस योग्यता से? हरएक मनुष्य जहाँ मेरुदण्ड-विहीन कापुरुष में परिणत हो गया, देश या समाज वहाँ पौरुष का प्रमाण देगा किस जादू-मन्त्र से? हरएक मनुष्य जहाँ दास-मनोवृत्ति के प्लावन से बहता जा रहा है, देश या समाज वहाँ आत्मप्रतिष्ठा का अभ्रभेदी भवन निर्मित करेगा किस इन्द्रजाल से? यथार्थ में ही यदि भारत-समाज को विश्व-समाज के नेतृत्व के सिंहासन पर समासीन करने की आकांक्षा का हमारे हृदय में उदय हुआ हो, यथार्थ में ही यदि

भारत की निजी विशिष्टता की बाढ़ से संसार को प्लावित करने की इच्छा हमारे भीतर उत्पन्न हुई हो, तो हरएक छोटे-बड़े मनुष्य के भीतर मनुष्यत्व-लाभ की आकांक्षा और योग्यता को उन्मेषित कर लेना होगा। छोटे-बड़े का विचार छोड़कर, जाति-वर्ण का घेरा तोड़कर तथा स्त्री-शूद्र के अनधिकार को अस्वीकृत करके हरएक को ब्रह्मशक्ति प्राप्त करने का पथ प्रदर्शित कर देना होगा। व्यष्टि-रूप से अभी भी हमारे भीतर बड़े होने के यथेष्ट उपादान और सम्भावनाएँ सञ्चित हैं, हृदय की उदारता से उस व्यक्तिगत सम्पद् को सारी जाति के भीतर सञ्चारित कर देना होगा—तभी हम समष्टि-रूप से मनुष्य होंगे, तभी हम जाति रूप से बड़े होंगे त्याग के भीतर से ही व्यक्ति का जीवन समष्टि की ओर अग्रसर होता है। दूसरी ओर स्वार्थ के भीतर से वह अपने चारों ओर संकीर्ण घेरा डाल देता है। जिस दिन व्यष्टि व्यक्तित्व के घेरे में न रहना चाहेगी, त्याग के चिर-बन्धुर दुर्गम मार्ग से समष्टि की ओर दौड़ेगी, जिस दिन तुम धन-सञ्चय करके अकेले ऐश्वर्य के आनन्द में सन्तुष्ट नहीं रह सकोगे, जब स्वदेश-वासी सभी को सम्पन्न बनाने की उन्मादना में मत्त हो जाओगे, जिस दिन ज्ञान-सञ्चय करके भी तुम अकेले ज्ञानी रहने में तुष्ट न रहोगे, हरएक मनुष्य की अज्ञानाच्छन्न हृदय-कन्दरा में ज्ञान की बत्ती लेकर पहुँचोगे, परम प्रेममय का नित्य मधुर कोमल स्पर्श पाकर

भी सुस्थिर न रह सकोगे, प्रेम वितरित करने के लिए द्वार-द्वार में दौड़ते चलोगे, उसी दिन जान लेना कि भारत बड़ा हो रहा है।

जातीय शिक्षा

स्वार्थ जब बड़ा होता है तब देश, जाति, जगत् या मनुष्य का यथार्थ स्वरूप उस स्वार्थ की आड़ में पड़कर अदृश्य हो जाता है। यही स्वार्थ जब चोट पर चोट खाकर चूर चूर होकर गिर पड़ता है तभी हम ठीक ठीक देख सकते हैं कि देश क्या है, जाति क्या है, जगत् क्या है और मनुष्य ही क्या है। तभी हम समझ सकते हैं कि इन्हीं की पूर्णता की रक्षा करना ही हमारी आत्मरक्षा है। इसीलिए जो शिक्षा हमारी स्वार्थ-बुद्धि को समेट कर अपने दुःख से दूसरे के दुःख को बड़ा देखना सिखाती है, मैं उसी को कहता हूँ—जातीय शिक्षा। प्रचलित शिक्षा-पद्धति को कड़े शब्दों में गाली देकर, ठीक उसी के अनुकरण पर एक नयी शिक्षा-पद्धति प्रचलित करने का नाम ही जातीय शिक्षा-दान नहीं है। यहाँ तक कि वर्तमान शिक्षा का विद्रोह कर या प्राचीन शिक्षा का पुनःसंस्कार कर गौ-शालाओं को गाय-बछड़ों से भर देने को भी मैं जातीय शिक्षा नहीं कहूँगा। वर्तमान शिक्षा के भीतर से ही हो या प्राचीन शिक्षा के भीतर से ही हो अथवा कोई नवीनतम शिक्षा प्रचलित करके उसके भीतर से ही हो, जिस दिन हम जाति की

शिक्षा-प्रार्थी कुमारशक्ति और कुमारी-शक्ति को आत्म-प्रीति पर अनास्था दिखाकर परार्थ में स्वार्थ-त्याग करने की प्रेरणा दे सकेंगे, अपनी मुक्ति के लिए नहीं, किन्तु जगत्-कल्याण के लिए ही जिस दिन ये लोग त्याग को अपनाना चाहेंगे, इन्द्रिय-भोग के लिए नहीं, किन्तु जातीय उत्थान के लिए ही ये लोग गार्हस्थ्य को ग्रहण करने के लिए तैयार होंगे, उसी दिन हम यथार्थ जातीय शिक्षा का प्रवर्तन कर सके, कहने से सत्य की अमर्यादा न होगी। देश के लिए अपना सर्वस्व सौंप कर जो लोग चिर-दरिद्रता को स्वीकार कर लेते हैं, वे भी यदि नवीन शिक्षार्थियों के भीतर किसी अज्ञात कारणवश दूसरे का पावना उसे दे देने की रुचि और प्रवृत्ति न जगा सकें, तो मैं कहूँगा, वह जातीय शिक्षा नहीं है। जातीय शिक्षा का मूल तत्त्व—शिक्षक का धर्म, वर्ण या जातीयता नहीं है—परार्थपरता ही जातीय शिक्षा का मूलमन्त्र है।

प्रेम चाहिये

नदी के इस पार गाना गाने पर उस पार से प्रतिध्वनि अवश्य आयेगी। तुम्हारे मन्दिर में जब प्रेम-संगीत गुञ्जित होने लगेगा, तब देखोगे, सारे विश्व में वही संगीत गूँज रहा है। तुम्हारे कुञ्ज में जब फूल खिलेगा, तब विश्व की वाटिका अपुष्पित नहीं रहेगी। हम प्रेम नहीं पाते, इसलिए कि, प्रेम देना नहीं जानते। यदि हमारे भीतर प्रेम ही होता, तो हर घर में

दस-दस चूल्हे न जलते, सौ दो सौ जातियाँ न बनतीं, सब धर्म-कर्म चौके में न घुस जाते। दो पन्ने अंग्रेजी पढ़कर तुम मुझसे घृणा करो या मैं गले में कुछ रूई के सूत डालकर तुमसे घृणा करूँ—यह तो प्रेम का ही अभाव है। यदि लेशमात्र प्रेम भी तुम्हारे और हमारे में होता, तो तुम्हारी और हमारी सम्मिलित कर्मशक्ति को देखकर संसार आज आश्चर्य से अवाक् रह जाता।

अखण्ड देश

छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, सभी को लेकर ही तो देश है! इनमें किसी को छोड़ देने से तुम देश को उन्नत नहीं कर सकते। छोटे को छोड़ देने से बड़ा छोटा हो जायगा और बड़े को छोड़ देने से छोटा छोटा ही रह जायगा; देश नहीं उठेगा।

हम अमर हैं

जो लोग कहते हैं, हम मरण-सलिल में डूब गये हैं, वे घोर मिथ्यावादी हैं। जगन्नाथपुरी के समुद्रतट पर जो प्राण-स्पन्दन अभी भी अविकृत है, उसे सर्वत्र सम्प्रसारित कर दो—जाति-वर्ण का भेद-भाव भूलकर समस्त जातियाँ एक हो जायेंगी। मृत्युञ्जय के सर्वस्व-त्याग का पवित्र भस्म ललाट में लगाकर हरएक मनुष्य दधीचि की तरह अस्थि-दान करेगा।...हम मरे नहीं हैं और न मर ही सकते हैं।

भक्ति का अधिकार

प्रेम से पिघल कर जल हो जाओ। परन्तु पिघलने के पहले जम जाओ—बरफ हो जाओ, कठोर निष्पेषण के भीतर से। स्वच्छ हो जाओ, बक-यन्त्र के भीतर से विन्दु विन्दु करके आत्म-विश्लेषण घटित कर। उसके अनन्तर स्वर्ग के अमृत की भाँति ईश्वर के आशीर्वाद रूप से संसार-भर में बरस जाना ; परन्तु पहले नहीं।

मेरी माँ

तुम्हारे और हमारे में सम्पर्क है केवल माता की स्नेह-स्निग्ध दृष्टि के बन्धन के द्वारा। यह संसार मेरा है, प्रकृति का हँसना-रोना, आँधी-पानी, सुख-दुःख, सभी मेरे हैं, इसलिए कि केवल 'माँ मेरी हैं।' 'माँ मेरी हैं' इस कारण ही तो सुख, सौभाग्य, समृद्धि जिस प्रकार मेरे हैं, उसी प्रकार दुःख, दुर्दशा, दुर्गति भी मेरे ही । 'माँ मेरी हैं' इसलिए ही तो हिमालय के समान बाधा के सामने निर्भय होकर खड़ा रहूँगा और अवनत, अनादृत, अवज्ञात अब्राह्मण को अर्घ्य देकर सिर पर धर लूँगा।......आओ, एक बार उच्च नाद से आकाश विदीर्ण कर घोषणा कर दें—"अमानिशि के अन्धकार में जब सारी सुख-स्मृतियाँ आच्छन्न हो जायेंगी तब भी 'माँ मेरी हैं' ; चपला जब चंचल होकर चमकेगी, मेघ जब गगन विदीर्ण कर गरजेगा,

तब भी 'माँ मेरी हैं' ; धरती जब आग से जल जायेगी, तब भी 'माँ मेरी हैं' ; समुद्र जब बरफ में परिणत हो जायेगा, तब भी 'माँ मेरी हैं'।''

हृदय की कामना

तुम्हारे सुख के नन्दन-निकुञ्ज की मेरे हृदय में कामना नहीं है। सैकड़ों सिर जहाँ झुके रहते हैं, वहाँ सुख में भी मुझे वेदना मिलती है। जब मेरे शत कोटि भाई हृदय में वेदना लेकर रो र हैं, तब सुरीली रागिणी का सुमधुर आलाप मेरे हृदय में आनन्द की लहर नहीं उठाता, सुर-शिल्पी के उदात्त संगीत से भी मेरा हृदय उल्लास से नहीं नाचता।

ऊषा के उज्ज्वल अरुण राग में उत्फुल्ल होने को मुझे न बुलाओ। कितने ही स्त्री-पुरुष अमा-निशि के अज्ञानान्धकार-में मोह से अचेत पड़े हैं उन सभी के नयनों में ज्ञान का प्रकाश देने के पहले मैं कैसे उन्हें छोड़ जाऊँगा ? मैं आशा का महल बनाना नहीं चाहता, अमर यश प्राप्त करना भी नहीं चाहता, धन के लालच से लक्ष्य-भ्रष्ट होकर विश्व को वशीभूत करना भी मैं नहीं चाहता, दलित दीनों की सेवा में जीवन सौंप कर अपना जीवन-मरण भी भूलना चाहता हूँ।

देशोद्धार

भरोसा रखना, ज्वलन्त साधना पर, जीवन्त तपस्या पर—

बात पर नहीं। विश्वास रखना, प्राणों की प्रेरणा पर, अन्तर के आह्वान पर—बाहरी उच्छ्वास के शत कल-कोलाहल पर नहीं। देशोद्धार अभिनय नहीं है—वह है सजग, सतेज, सजीव कर्म। आत्म-प्रतिष्ठा कल्पना की लीलायित लहर नहीं है—वह है वास्तविकता का सौम्य सुन्दर प्रशान्त अधि-ष्ठान। अभीष्ट लाभ केवल इच्छा से नहीं होता—होता है इच्छा की अदमनीय शक्ति से, साधक की प्राण-विद्युत के पुञ्जीभूत प्रबल स्पन्दन से तथा सङ्कल्प के दुर्निवार आकर्षण से। जो सुख-सौभाग्य क्षुधार्त जनता की दुःख-दुर्दशा न मिटा सका, उसे सदा के लिए जाह्नवी-सलिल में फेंक दो। जो नेत्र जनता के नयनों में आँसू देखकर शोकाप्लुत न हुआ, अपने हाथों उसे उखाड़ डालो। जो कान देश-वासियों की क्षीणतम दीर्घ-निःश्वास सुनकर भी अपरिसीम सुहानुभूति से चंचल न हुआ, गलित सीसे से उसे जन्म-भर के लिए बन्द कर दो। जो जिह्वा आत्मप्रशंसा और आत्म-वञ्चना छोड़कर देशानुराग का पूर्वराग गाने में और जातीय अभ्युत्थान की सञ्जीवनी गीति अनन्त ऊर्ध्व में सम्प्रसारित करने में निःशंक न हुआ, उसे तीखी तलवार के धार काटकर दग्ध मरुभूमि की प्रतप्त बालुकाओं पर फेंक दो। जो हृदय देश की व्यथा से व्यथित, देश पर किये गये आघात से आहत, देश के दुःख से दुःखित न हुआ, शैलाघात से उसे विदीर्ण कर डालो। जो भुजा स्वजाति की दुर्दशा न मिटा

सकी, स्वदेश की कलङ्क-कालिमा अपने हृदय के रक्त से धो डालने को सन्नद्ध न रही, प्रचण्ड वज्राघात से उसे चूर्ण कर दो। जो चीज देश के कल्याण को जागृत नहीं करती उसे न मांगो; जो वस्तु जाति के भविष्य का निर्माण नहीं करती, उसे न रखो; यदि वह प्रिय हो, पूज्य हो, शत जीवनोंकी साध-आकांक्षा का निर्यास भी हो तो उसे लात मारकर दूर कर दो। इसी तरह इच्छा-शक्ति को अलंघनीय बनाना होगा, देश को सर्वस्व समझकर उसका आलिंगन करना होगा, स्वजाति की उन्नति की आकांक्षा को सर्वावलम्बन जानकर कंठ-लग्न कवच करना होगा। नहीं तो देशोद्धार न होगा, जीवन-मृत्यु के इस भयानक गहन वन का अतिक्रमण कर अमृतत्व के चिर-हरित दिव्य प्रान्तर में पहुँचना सम्भव न होगा।

मेरा देश

यदि भारत अधःपतित है तो भी वह मेरा ही देश है। सब प्रकार के दोषों और अपराधों के रहते हुए भी मैं अपने स्वदेश को प्यार करता हूँ, अपनी स्वजाति-प्रीति के आलिंगन से उसे जकड़ लूंगा। स्वदेश के ही लाखों लाञ्छन ललाट में लगाकर मर मिटना चाहता हूँ, पर विदेश के अतुल गौरव से स्पर्द्धा नहीं करना चाहता। स्वदेश की दुर्गन्धी धरती ही मेरी तीर्थ-भूमि है, स्वदेश का पंकिल प्रवाह ही मेरी

मन्दाकिनी है तथा स्वदेश की विषण्ण पातालपुरी ही मेरा स्वर्गीय नन्दन-कानन है।

सबलता और दुर्बलता

देह की दृढ़ता, स्थूलता या क्षीणता देखकर सबलता या दुर्बलता का परिमाप नहीं किया जा सकता। मनुष्य शक्तिमान या अशक्त देह से नहीं है, मन से—हृदय से है। हृदय को जिसने विचार-रहित होकर दलित-पतित-अन्त्यज-ब्राह्मणों के भीतर जिस परिमाण में वितरित कर दिया है, वह उतना ही बलवान है और जिसने अप्रेम के दृढ़ रज्जु से अपने विराट अस्तित्व को कसकर जिस परिमाण में सङ्कीर्ण कर रखा है, वह उतना ही दुर्बल है। जब देखूँगा, दुर्भाग्य दुर्गत देश के निखिल दैन्य दूर करने के निमित्त प्रेमावेश से तुमने सभी प्रकार के शेलाघातों के लिए अपना विदीर्ण वक्षःस्थल उन्मुक्त कर दिया है तब तुम्हारी अपराजेय सबलता के सम्मुख श्रद्धा से, सम्मान से सिर झुका दूँगा; और जब देखूँगा, मिथ्या सम्मान संग्रह करके आत्म-सम्मान पर लात मार कर स्वार्थवश तुम स्वदेश-प्रेम को पद-दलित कर रहे हो, तब तुम्हारी अपरिसीम दुर्बलता तुम्हारे लिए सहस्र कंठों की धिक्कार-ध्वनि खींच लायेगी। देश को प्यार कर तुम कृश शरीर भी बलिष्ठ हो—देश की उपेक्षा कर अटूट स्वास्थ्य रहते हुए

भी तुम दुर्बल हो। देश-सेवा की क्षीणतम आकांक्षा हृदय में रहने से तुम निद्रा में भी जाग्रत और मृत्यु में भी जीवित हो और अपने स्वार्थ में सदा जागृत रहने से भी तुम निद्रित, आत्मोदर-पूरण में चिर-जीवित रहकर भी तुम मृत के समान हो।

आत्म-गरिमा

तुमने जो अपने कन्धे की धमनी काटकर अनुराग के रक्त-सिंचन से जननी जन्मभूमि का पुण्य अभिषेक किया है, तुमने जो अपने हृत्पिण्ड को समूल उत्पाटित कर देश-मातृका के चरण-कमलों में शतदल कमल के रूप में अञ्जलि-प्रदान किया है, अपने मुख से इसे प्रगट करने की आवश्यकता नहीं होगी—तुम्हारा अपराजेय कर्म ही उसे नीरव भाषा में अनाहत नाद से घोषित करेगा। वाटिका की पुष्परागी आत्म-गरिमा नहीं करती, अपना अपूर्व सौरभ दशों दिशाओं में फैलाकर अगणित प्राणियों के प्राण हर लेती है। आकाश के नक्षत्र-निचय घर-घर अपनी गुणगाथा गा-गा कर नहीं फिरते, बल्कि अपनी स्निग्धोज्ज्वल किरणों के वितरण के द्वारा उदासीन के भी अलस नेत्रों में तड़ित्-चाञ्चल्य खींच लाते हैं। जिस महती प्रेरणा को पाकर उत्ताल समुद्र-तरंग में तुम उछल पड़े हो, वह अपने को आत्म-प्रशंसा के अन्धकूप में आबद्ध करने के लिए नहीं है। जिस शक्ति के स्फुरण से प्राणमय उच्चाकांक्षा का

दावानल जल उठा है, वह तुम्हारे व्यक्तित्व को अगणित अन्तरों में सञ्चारित किये बिना पूर्णता प्राप्त न करेगा, यह तुम निश्चय जान लेना। परन्तु सावधान, कदापि आत्म-प्रशंसा की स्याही पोतकर अपने गौरव-दीप्त भास्वर ललाट पर अगौरव का अन्धकार छा जाने न देना। तुम्हारा त्याग, तुम्हारा आत्म-बलिदान कितने ही महान् क्यों न हों, प्रतिक्षण इस श्रेष्ठतम सत्य में चिर-जागृत रहना कि, स्वजाति के उद्धार के लिए केवल अपना जीवन सौंप देने से ही यथेष्ट न होगा—तुम्हारे जैसे सहस्र जीवन प्राप्त करने होंगे, सहस्र जीवन ही आदर्श के चरणों में निर्भय और निस्सङ्कोच होकर अपने हाथों उत्सर्गीकृत करने होंगे। नहीं तो कोटि कंठों के करुण क्रन्दन न रुकेगा, कोटि हृदयों की असहनीय हृदय-ज्वाला न बुझेगी, कोटि नयनों की विगलित अश्रु धारा न सूखेगी। विश्वास रखना, दुर्भाग्य का वह दुर्जय रणोन्माद तुम्हारे ही आत्मत्याग के सुतीक्ष्ण कृपाण के सामने अवसन्न हो जायगा ; परन्तु याद रखना, आत्म-विश्वास पर जीवन की नींव डालकर आत्म-प्रशंसा की दुर्बलता से उस महल को भंगुर कर डालने से काम न चलेगा।

आलस्य दोष की जड़ है

संसार में सभी अपराधों की क्षमा है, सभी दोषों का क्षालन है, सभी पापों का प्रायश्चित्त है—नहीं है केवल आलस्य का।

अनलस कर्मी पुरुष हजारों हाथों से कर्म करते हुए लाखों बाधा-विघ्नों के भीतर से भी अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर लेता है, और अलस व्यक्ति की सुदृढ़ प्रतिष्ठा भी अपने आप विध्वस्त हो जाती है। अलस राजा का राज्य वायु में उड़ जाता है, अलस व्यक्ति का स्वस्थ शरीर भी बिना व्याधि के क्षय-प्राप्त हो जाता है, अलस का धन चूहे के बिल में से दूसरे के घर चला जाता है। महापापी भी अक्लान्त कर्मशीलता के प्रभाव से जीवन को दुःखों से मुक्त कर लेता है और अलस का समृद्ध जीवन दुर्भाग्य की बाढ़ से बह जाता है। कर्मी अपना अन्न भगवान् के भण्डार से अपने बाहुबल के द्वारा छीन लाता है और अलस का घृतान्न उदर में अम्ल उत्पन्न कर उसे मृत्यु के पथ पर खींच लेता है। अलस की चिन्ता कुवासनाओं से पुष्ट होकर जीवन को दुर्वह तथा अन्धकारपूर्ण कर डालता है और कर्मी का अनलस चिन्ताप्रवाह संसार के प्राण-प्रवाह में बल-सञ्चार करता है।

श्रेष्ठ सत्य

तुम जो चिर-नवीन, चिर-प्रवहमान और चिर-विचित्र हो वह केवल विविध विपत्तियों के विविध प्रकार की संग्राम-लीला के भीतर से अपने व्यक्तित्व को क्रमशः विकसित कर रहे हो, इसीलिए। तुम जो सदा-सुन्दर, चिर-मनोहर हो, वह केवल दुःखों के साथ मल्ल-युद्ध के गुत्थम-गुत्थे

के समय तुम्हारे में जो कुछ असुन्दर, जो कुछ कुत्सित है वह सब पथ की धूलि में गिरता जा रहा है, इसीलिए। ईश्वर की शुभेच्छा जो विपत्तियों पर विपत्ति के द्वारा ही हमें परिणत और पूर्ण कर देती है यही सबसे बड़ी सान्त्वना की बात है। पीठ पर बोझ ढोता हूँ, छाती पर चोट सहता हूँ, केवल भगवान् का आदेश समझ कर—यही सबसे श्रेष्ठ सत्य है। फिर उस बोझ के दबाव से झुक न जाऊँ या वेदना के भय से पीछे न हटूँ, वह भी ईश्वर की ही इच्छा है, यह भी परम सत्य है।

छोटे नहीं हो

तुम छोटे नहीं हो, तुम दीन नहीं हो, यह बात वज्र-कंठ से घोषित कर दो। संसार को कम्पित करते हुए बोलो—"मैं छोटा नहीं हूँ, मैं तुच्छ नहीं हूँ, मैं कृपापात्र भी नहीं हूँ। मेरा जीवन अक्षत—अटूट है, मेरा आदर्श अत्युन्नत—अति सुन्दर है और मेरे भगवान् अद्वितीय हैं।" सैकड़ों बार बोलो कि, तुम्हारे निःश्वास से अन्धड़ बहता है, तुम्हारे इंगित से प्रलय हो जाता है, तुम्हारे ही मुख की प्रसन्न मुसकान से फूलों में चिर वसन्त विराजमान होता है और तुम्हारी ही रुद्र दृष्टि से सारा विश्व जल-भुन कर खाक हो जाता है।

बड़ा होना हो तो बड़े ही हो

'ऊँचा पेड़ ही आँधी से गिरता है'—'बहुत बड़े का ही

पतन होता है'—यह बात कापुरुषों की है। अच्छा तो जरा आँधी से गिरे पेड़ की तरह बड़े होने की चेष्टा ही करके देखो न? सबके संगीन बड़े की ओर उठाये रहते हैं, क्या इसीलिए बड़ा न होऊँगा? जंगलों में भटकते रहने पर भी राणा प्रताप चिर-पूज्य हैं। सेन्ट हेलेना में बन्दी-जीवन बिताकर भी फ्राँसीसी वीर नेपोलियन सबके सिरमौर हैं। घटोत्कच मरते-मरते भी अगणित शत्रु-सेना को मार डालता है। तुम हाथी ही बनो, ताकि मर जाने पर भी लक्ष रुपये के रह जाओ। च्युँटी का जीवन किस काम का? घास-पात की संख्या-वृद्धि से संसार को क्या लाभ? बड़ा होना ही होगा, कितना ही मूल्य क्यों न देना पड़े।

कर्म के पथ पर

यदि कर्म के पथ पर चलना चाहो तो विश्वास रखो, यह पथ तुम्हारा ही है। विश्वास रखो, तुम्हारे ही स्वदेशानुराग की परीक्षा लेने के लिए विपत्ति के कोटि कंटक पथ पर पड़े हैं। विश्वास रखो, इनमें किसी एक काँटे का गड़ना भी व्यर्थ नहीं है, इनमें से एक की वेदना भी तुम्हारे मनुष्यत्व को समुन्नत किये बिना नहीं नष्ट होगी। तुम्हारे ही अन्तरतम महत्त्व को ये जागृत कर देना चाहते हैं, तुम्हारे ही चरणों के शोणित-सिंचन से ये पृथ्वी को पुण्याप्लुता तीर्थभूमि बनाना चाहते हैं।

कैसा जीवन चाहिये ?

वैसा जीवन चाहिये, जो मृत्यु के सामने भी न झुके; वैसा जीवन चाहिये, जिसे कोई विस्मृत न हो; वैसा जीवन चाहिये, जो भेद-भाव को मिटा दे, जीवन को करे रौद्र-दीप्त कर्ममय और मरण को करे शान्ति-स्निग्ध सिद्धिमय। जीवन को चाहता हूँ, मरण को भी चाहता हूँ—अपने लिए चाहता हूँ, देश के लिए चाहता हूँ और चाहता हूँ संसार के लिए।

उन्नति का उपाय

दूसरे की हिंसा करने से अपनी उन्नति नहीं होगी, आत्मोन्नति के लिए अपने को प्यार करना होगा। दूसरों की भलाई-बुराई, न्याय-अन्याय की पूर्णतया उपेक्षा करके अपनी भलाई-बुराई, न्याय-अन्याय का विचार करना होगा। आत्म-प्रतिष्ठा पर ही लक्ष्य स्थिर रखो, पर-चर्चा का परिहार करो। अपने ऊपर अगाध प्रीति लेकर अपना भविष्य विश्वामित्र की तरह कठोर तपस्या के द्वारा ब्राह्मण्य से मण्डित करो। असीम आत्मप्रेम से विश्व के सभी कोहिनूर लाकर अपने विलास में उपहार दो। ध्यान न दो—दूसरे क्या कहते हैं; घूम कर पीछे न देखो—लोग क्या करते हैं। आत्मोन्नति-साधन के लिए जिसे तुम श्रेष्ठ पथ समझ कर अपना लिया है, कर्म-जीवन के प्रति-पदक्षेप में उसी पथ पर से अग्रसर होते चलो।

मुक्ति का अर्थ

दूसरों पर कर्तृत्व करने की शक्ति उत्पन्न होने से ही मुक्ति नहीं होती। अपनी सैकड़ों प्रकार की नीचताओं, हजारों प्रकार की दुर्बलताओं, लाखों प्रकार की उच्छृंखलताओं पर जिस दिन प्रभुत्व का प्रभाव विस्तार कर सकोगे, उसी दिन मुक्ति मिलेगी। दुःखी दीन दलित पड़ोसियों के सिर पर निष्ठुर पदाघात जमाकर शेखी न बघारो। मातृजाति का शत लांछनाओं से निर्यातन करके मुक्ति का गर्व न करो। यदि मुक्त होना चाहो तो पतित को उठाकर छाती से लगा लो, सोये हुए को जगा दो, अलस को कर्म-मंत्र में दीक्षित करो। अपने हृदय की मुक्त बाँसुरी की ध्वनि को विचार-रहित और संकोच-शून्य होकर सभी के प्राणों में गुँजा दो। किसी को न छोड़कर, किसी को वञ्चित न करके, जिस दिन मुक्ति आयेगी, उसी दिन वह अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होगी।

श्रेय ही चाहिये

क्षणिक दहन से यदि चिर-शान्ति मिलती है तो जल कर खाक होने में डर क्या है? क्षणिक की व्यथा-वेदना से यदि चिर-चेतना जागृत होती है तो अटल क्यों न रहूँगा? क्षणिक की मृत्यु से यदि अनन्त अमृतत्व मिल जाता है तो क्यों न मृत्यु का आलिंगन करूँगा? इष्ट यदि मिलता है तो कष्ट सहने में रुष्ट क्यों हूँगा?

जीवन का पथ

मरने ही जब बैठा हूँ, तो फिर विचार-वितर्क के वृथा तन्तु बनाकर मैं उसी में जकड़ जाना नहीं चाहता। वर्तमान का विपुल दुःख-दहन गत कर्मों के अमोघ फल-रूप होने पर भी आज पश्चात्ताप का अवसर नहीं है। कृत कर्मों के लिए गरम आँसू बहाकर वृथा समय-क्षेप करने का अब अवकाश नहीं है। किसी भी प्रकार से हो एक तिनका पकड़ कर भी यदि अधःपतन के स्रावन-पीड़न से अपने को बचा सकूँ, किसी उपाय से भी यदि मृत्यु के कराल कवल से दूर हट कर रह सकूँ, आज मुझे उसी के लिए प्राणपात परिश्रम करना होगा। उन्नति मात्र ही जब पतन-धर्मी है, संयोग मात्र ही जब वियोग-गामी है, जीवन मात्र ही जब मृत्युमुखी है, तब समझना चाहिये कि हमारी यह दुस्सह दुःख़-दुर्दशा प्राकृतिक नियम से ही आयी है; फिर—रजनी के घोर अन्धकार के अनन्तर जिस प्रकार स्निग्धोज्ज्वल किरण-माला का कनक-किरीट पहन कर ऊषा का उदय होता है, वर्षा का बादल हट जाने पर जिस प्रकार धरणी चन्द्रिकाप्लुत होकर विपुल हर्ष से हँसने लगती है, शीत के प्रबल प्रकोप से पत्र-पुष्प-हीन होकर भी वसन्त के आगमन से जिस प्रकार पादप-पुञ्ज कोकिल-कूजन और भ्रमर-गुञ्जन से समस्त विषाद-वेदना भूल जाते हैं, हमारी भी उसी प्रकार दुःख-निशाका

अवसान होगा, हमारे आननों में हँसी खिलेगी, हमारे भी जीवन-कानन में भृंग-कोकिल नव वसन्त की जीवनप्रद अमृत-धारा मलय-हिल्लोल के तरंगित अंग में अकृपण कंठ से प्रवाहित करेंगी। आज इस हताशा के दिन में, अवसाद के इस दुःखपूर्ण मुहूर्त में, कल्पना के कुहक-स्नेह से केवल आशा का दीपक ही जला रखना होगा। यदि जीना चाहो, इस आशा की वाणी को न भूलो। आशा से ही जीव जीवित रहता है। शत-शत दुःखों के दारुण दहन में मनुष्य आशा से ही हृदय को बाँधे रखते हैं। तुम्हारा सुख-सूर्य अस्ताचल की ओट में डूब गया है, परन्तु पुनः वह पूर्व गगन में प्रोज्ज्वल-ज्योति-मण्डित होकर उदित होगा—केवल आशा बनाये रहो। तुम्हारी जीवन-प्रवाहिनी सूख गयी है, किन्तु पुनः वह कल्लोलिनी दोनों कूल स्रावित कर प्रवाहित होगी—केवल आशा रखो। यदि वास्तव में ही निराश हो गये हो, तो केवल कल्पना से धीरज धरो—डरो मत भाई, यह दुःख मिटेगा, यह कलंक लुप्त हो जायगा, हम मरते-मरते भी जी उठेंगे। याद रखना—यही हमारी जाति के उत्थान का एकमात्र राजमार्ग है—'नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।'

जन्म-स्थान का अधिकार

जिस मिट्टी का स्पर्श पाकर जीवन में मैंने पहले-पहल आँखें खोली थीं, उस मिट्टी के ऊपर केवल बातों से अधिकार नहीं

उत्पन्न हो सकता। जानना होगा, यही मिट्टी अपनी मुक्ति का प्रतीक है, यही मिट्टी अपने जीवन की परम पूज्य देवी-प्रतिमा है, यही मिट्टी अपने शत कोटि जन्मों की आकांक्षा की परितृप्ति है और है अपने दुःख-दग्ध क्षत पर स्निग्ध चन्दन का प्रलेप। समझना होगा, यह मिट्टी अपनी सभी आशा-आकांक्षाओं का निर्यास है और है अपनी कर्म-समृद्धि का भास्वर भाल-तिलक। इसे प्यार करना होगा—कवि के कोमल, लहराने वाले, आवेगाकुल हृदय से; इसकी पूजा करनी होगी—तत्त्वज्ञों की समाधि-शुद्ध अन्तःकरण की गम्भीर भावुकता के द्वारा। तभी यह अपनी होगी। जो अमल अतुल स्नेह-धारा इसके स्तन-युगल से क्षीर-नीर के रूप में क्षरित हो रही है, उसी से पुष्ट होकर उसी के चरणों पर जीवन, मरण, शयन, जागरण—सभी अवस्थाओं में समर्पितात्मबुद्धि और निवेदितात्मचित्त होना पड़ेगा। तभी यह अपनी होगी। जिसे कभी प्यार नहीं किया है, जिसके प्रेम की मर्यादा रखने के लिए प्राणों की बाजी न लगायी है, क्या वह कभी अपना हो सकता है?

स्वदेश-पूजा

शैव जिन्हें शिवमय समझकर उपासना की कुसुमाञ्जलि का उपहार देता है, वैष्णव जिन्हें विष्णु जानकर तुलसीदल अर्पण करता है, शाक्त जिनको शक्ति मानकर अपने जीवन-दीपक में

साधनाग्नि की आरती उतारता है, उनमें और अपने स्वदेश में मैं अभिन्नता ही देखना चाहता हूँ। इस देश के भी प्रति-परमाणु में विश्व-विधाता ने अपने को व्याप्त कर रखा है। यदि मैं उसी को ब्रह्ममय समझ कर प्राणमयी पूजा से प्रसन्न करने की योग्यता के अर्जन में उन्मुख रहता हूँ, तो उसमें अपराध क्यों होगा ?

साधुता

सदा ही मृत्यु के लिए तैयार होकर साहस के साथ बैठने का नाम ही साधुता है।

मृत्यु-भय

मृत्यु से जो लोग डरते हैं, मृत्यु उन्हीं की पहले होती है।

दुर्भोग और दासत्व

लोभ के वश भोग करने का नाम भोग नहीं है, वह है दुर्भोग ; शासन के भय से त्याग करने का नाम त्याग नहीं है, वह है दासत्व।

अर्थ या उत्सर्ग

सम्पद मनुष्य के चरण-रेणु है या पथ की धूलि। मनुष्यत्व की साधना में जो सिद्ध हुए हैं, उनके पद-नख-कोणका स्पर्श पाकर समृद्ध होने के लिए वह अपने आप दौड़कर आ जाती है। सर्वत्यागी महेश्वर की चरण-सेवा की दासी कौन है जानते

हो ? सर्व सम्पदाओं की खान, सर्व ऐश्वर्यों की प्रसूति, लक्ष्मी की जननी, स्वयं पार्वती। अपने जीवन का सारा माधुर्य उस नग्नकाय विभूति-लिप्तांग भावोन्मत्त क्षिप्त के चरणों में सौंपकर वह कृत-कृतार्थ हुई हैं। अंग में विभूति मल लेने के कारण ही महेश्वर विभूतिमान हैं। तुम भी जब अपने अंग में राख का अंगराग कर सकोगे, स्वेच्छा से सर्वस्व सौंपकर जब तुम निर्द्वन्द्व चित्त से कृत्तिवास हो सकोगे, तभी आयेगी सम्पद और तभी आयेगी कीर्त्ति। कृत्तिवास न होने से, बाघ-छाल न पहनने से, कीर्ति नहीं आती—आता है केवल चाटुकारों का अस्थायी चंचल उच्छ्वास। युगों का संचित कुवेर-भण्डार क्षण भर में उँड़ेलकर जिन लोगों ने अमर कीर्ति अर्जन करना चाहा, वे विस्मृति में विलीन हो गये हैं। दो चार दिन की खेल-कूद के साथ उनके चार दिन का अहंकार अनन्तकाल के लिए लुप्त हो गया है। क्या कीर्ति रुपये से आती है ? क्या उसे पैसे से खरीदा जा सकता है ? 'कीर्तिर्यस्य स जीवति'—उसीका जीवन अखण्ड है, जिसकी कीर्ति है अखण्ड ; उसीका जीवन भंगुर है, जिसकी कीर्ति है भंगुर। वह मरा हुआ है, जो कीर्तिमान नहीं। परन्तु क्या जीवन ऐश्वर्य के लघुत्व-गुरुत्व की अपेक्षा रखकर आता जाता है ? बिथेलहम की अश्वशाला में एक अनाथ बालक ने जो अमर जीवन प्राप्त किया था, क्या वह यहूदी पुरोहितों के खजाने का

हिसाब लिखकर ? नदिया के एक क्षुद्र कुटिर-प्रांगण में एक दरिद्र ब्राह्मण-कुमार ने परम पण्डित होते हुए भी जो हरिकीर्तन को ही अपने जीवन का सार समझ लिया था, क्या वह पठान बादशाह के द्वार जाकर भिक्षा की याचना करके ? एक ग्रामीण बालक जो अपने सारे अंगों में रामनाम का तिलक पहन कर, रोम-रोम रामनाम में रम गये थे और मानस में रामचरित लिखकर अमर हो गये, क्या वह राजाओं के दरबार में धरना देकर ? मनुष्य का ज़ीवन ही उसकी कीर्ति है, अपनी कीर्ति ही है वह स्वयं। दुर्गा-पूजा का उत्सव तो इतने दिनों से कर रहे हो, दश-प्रहरण-धारिणी महाशक्ति की आराधना का आडम्बर तो रच रहे हो, छाग-शिशु को उसकी माता की छाती से छीन लाकर जगज़ननी के चरणों में उसकी बलि भी चढ़ाते हो, परन्तु कभी तुमने अपने मानस-पशुओं की बलि चढ़ाने की भी सोची है ? कभी अपने जीवन या अपनी कीर्ति की बलि देने का भी आयोजन किया है ? क्या कभी ऐसा कर सके हो ? किस प्रकार से अपने को निःशेष रूप से उत्सर्ग कर देना होता है, क्या कभी किसी से उसका रहस्य जानने का प्रयत्न किया है ? सालभर तक जिस दुर्गा की पूजा का आयोजन करते रहे, क्या कभी उस पूजोपलक्षिता जननी की प्रसन्न दृष्टि की अपने हृदय में कामना की है ? तुमने चाहा था आत्म-प्रवञ्चक का तोषभाषण, मिथ्याश्रयी की स्वार्थ-श्लाघा।

हाय दुर्भाग्य ! तुम हो जगन्माता के उपासक, परन्तु सभी साधनाओं से तुमने उन्हें छोड़ ही दिया है। तुम भूल गये कि उनके क्षीण कृपा-कटाक्ष से सारा संसार नवीनता के वसन्त-यौवन से लावण्यमय हो जाता है। नाम-यश के याचक तुम, मान-प्रतिष्ठा के भिखारी तुम, उसे नहीं समझा और समझना भी न चाहा। मातृपूजा के पवित्र मन्दिर में वह कैसी वारवनिता की काम-कलुषित नृत्यकला ! मान-यश की कामना ही तो मनुष्य के मन की वारांगना है; उसका स्पर्श अपवित्र है और उसकी छाया अस्पृश्य। कामना छोड़ दो, अपनी बलि चढ़ाओ। जगज्जननी पशु का रक्त नहीं चाहतीं—चाहतीं हैं तुम्हारे हृदय का रक्त। जगज्जननी मूक कंठ का करुण कराहना सुनना नहीं चाहतीं, चाहतीं हैं मुक्त कंठ का मौन आत्मदान ! यदि दे सको तो दे दो, हृदय उँड़ेल कर दे दो, सारी आकांक्षा-कामनाओं को निःशेष करके दे दो; सभी भविष्यों की सभी कल्पनाओं को निःशेष करके दे दो; बिन्दु बिन्दु करके अपना प्रति बिन्दु रक्त बहाओ, तिल तिल करके जीवन सौंप दो; मौन रहकर सारी वेदनाओं को सहते चलो। विलाप न करो, प्रतिकार के लिए डुग्गी पीटकर, घड़ी-घण्टा बजाकर वायुमण्डल कम्पित न करो, सहस्र कंठों से आर्तनाद ध्वनित न हो। माता की पूजा एकान्त में चुपचाप करनी होगी। माता की अर्चना केवल माता ही देखेंगी और तुम देखोगे, और

कोई न देख सके। उसी तरह जीवन सौंप दो। जीवन बिना सौंपे जीवन नहीं मिलेगा ! जो मरा नहीं है, उसका फिर जीवन ही कैसा ? जो गिरा नहीं है, उसका फिर उत्थान ही कैसा ? जिसने किया ही नहीं है, उसकी फिर कीर्ति ही कैसी ? कीर्ति-मान ! सारी कीर्तियाँ दे दो। जीवन्त ! सम्पूर्ण जीवन दे दो, इहलोक दे दो, परलोक दे दो, तभी मनुष्यत्व की साधना पूर्ण होगी और तभी सम्पद तुम्हारी चरण-सेवा की दासी बन जायेगी।

प्रेम की जय

प्रेम जहाँ चिर प्रदीप्त है, आकाशस्पर्शी अहंकार वहाँ दीनता के चरणों में लोटने लगती है।

आँसू का सम्मान

दूसरों के दुःख में केवल आँसू गिराने से ही काम न चलेगा, पुरुषार्थ के द्वारा उस आँसू का सम्मान बनाये रखना होगा।

चित्त-तीर्थ

तीर्थ-दर्शन के लिए आकंठ आकुलता की आवश्यकता ही क्या है ? तीर्थ-यात्री के लक्ष्यीभूत सभी सुकृतियाँ घर में बैठ कर ही अनायास प्राप्त कर सकते हो, केवल यदि एक बार अकपट चित्त से हृदय की सभी कोलाहलमयी कामनाओं को स्वदेश के कल्याण के साथ संयुक्त कर दो। तुम्हारी आकांक्षा सहस्रों सिर

उठा कर अनन्त ऊर्ध्व में उत्थित हो, सहस्रों चरणों सेससागरा धरित्री के विपुल वक्षस्थल में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर ले; सहस्रों नेत्रों से विश्व भर में स्वार्थान्वेषण करे, सहस्रों भुजाओं से त्रिदिव-दुर्लभ भोज्य-पानीय संग्रह कर आत्मोदर पूर्ण करे। परन्तु मन में अविचलित विश्वास रखना चाहिये कि यह उत्थान अकेले तुम्हारा नहीं है—सारे देश का, यह प्रतिष्ठा तुम्हारी नहीं है—सम्पूर्ण जाति की, यह स्वार्थ तुम्हारा नहीं है—बुभुक्षित तीस करोड़ भाई-बहनों का। सहस्रों रसनाओं से स्वाद-ग्रहण करो, शतोदर होकर भक्षण करो, परन्तु याद रखना, तुम्हारी व्यक्तिगत तृप्ति से सारे देश की तृप्ति का रास्ता निकल आयेगा, तुम्हारी पुष्टि से तिल तिल करके सम्पूर्ण जाति के अंगों में कान्ति-पुष्टि सञ्चित होगी। ऐसा होने से तुम्हारा चित्त ही तीर्थ रूप में परिणत हो जायेगा—उस तीर्थ-तट का चरण चूम कर मुक्ति-मन्दाकिनी उल्टे बहेगी।

पतितोद्धार

जाति को उन्नत करने के लिए आत्माभिमान का स्पर्धित सिंहासन छोड़कर नीचे दीनों और दलितों के साथ सम्मिलित होना होगा। दुरन्त दुःखों के दुःसह दहन से जो लोग मरणोन्मुख हैं, कुसुम-परिमल-वाही स्निग्ध समीरण के जीवन-प्रद स्पर्श से यदि उनकी प्राणशक्ति को पुनरुज्जीवित करना चाहो तो सभी के साथ जल मरने के लिए दुःख के ज्वलन्त अग्निकुण्ड

में कूद पड़ना होगा। जिन लोगों ने मरना सीखा है, देश का दुःख उन्होंने ही दूर किया है—प्राणनाश की शंका से भयभीत, अहङ्कार से स्फीत, आत्मस्वार्थ में प्रीत, जीवित व्यक्तियों ने नहीं। अपनी सभी प्रतिष्ठाओं का परित्याग कर, अपनी भविष्य आशा के कल्पित प्रासादों को तोड़-फोड़ कर, निम्नतम के समान होकर खड़े हो जाओ, दीनतम की बगल में खड़े रहकर सभी लाञ्छनाओं को सहते जाओ। नहीं तो पतितों का उद्धार नहीं कर सकोगे, अवसन्नों की शिराओं में तड़ित्-प्रवाह नहीं बहा सकोगे। क्योंकि जहाँ समता नहीं है, वहाँ प्रेम नहीं है और जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ अभ्युदय भी नहीं है।

काल-प्रतीक्षा

कर्मी होने के लिए सहनशील होना पड़ेगा। अण्डा सेते समय यदि हंस-जननी अण्डा फूटा है या नहीं यह देखने के लिए मिनट-मिनट पर उठती जाय तो अण्डा नहीं फूटता, बल्कि सड़ गल कर नष्ट हो जाता है। चूल्हे पर हण्डी चढ़ाकर यदि अन्न के लिए अस्थिर होते हो तो भाग्य में अनसीझा चावल ही मिलेगा। मछली को जल में रख कर थोड़ी-थोड़ी देर पर उसे जल से उठा-उठा कर वजन कितना बढ़ा यदि यह बार बार देखते रहो तो वह मछली जी नहीं सकती। पेड़ की कलम को जमीन में गाड़कर यदि उसे बार बार उठा-उठाकर देखते रहो कि उसमें जड़ निकली है या नहीं तो वह नहीं बच सकती।

कर्म करके कर्मी को बेचैन होने से काम न चलेगा। जितनी साधना करनी है, उसे पूर्णरूप से निःशंक होकर समाप्त करके उसकी सिद्धि के लिए यथाकाल शान्त भाव से प्रतीक्षा करनी होती है।

लोक-निन्दा

लोग कितनी ही बातें क्यों न कहें, क्या उसके लिए गले में फाँसी लगाकर जीवन दे देना होगा? तुम तो अपने हृदय को जानते हो कि उसमें स्वार्थ की गन्ध भी नहीं है। तुमने किस परार्थ-प्रेरणा से अपने मन की सर्व-सुख-कामना को समूल उखाड़ फेंका है, जब तक देश इसे न समझेगा, तब तक वह गाली-गलौज करने से निवृत्त न होगा। जब तक तुम्हारी प्रबल प्रचेष्टा अव्यर्थ कर्म के भीतर से पूर्णतः सार्थक न होगी, तब तक लोग गाली देंगे ही या धोखेबाज कहेंगे ही। जब तक उपकार के बोझ से हरेक का सिर तुम्हारे चरणों में न झुकेगा, तब तक वे निन्दा करेंगे ही। संसार के सारे निन्दक कभी मर न जायेंगे, परन्तु इससे विश्व की सारी कीर्ति-प्रतिष्ठा भी कभी लुप्त न होगी।

मन्त्र का साधन

'मन्त्र का साधन या शरीर-पातन'—ऐसा सुदृढ़ सङ्कल्प चाहिये। 'करूंगा ही'—ऐसा हठ जो करना जानता है, वह

कार्योद्धार अवश्य कर लेता है। और सन्देह के झूले में जो निरन्तर दोनों ओर झूल रहा है, संशय-बुद्धि जिसे हर समय पीछे की ओर खींच रही है, अविश्वास जिसके नेत्रों के सामने कुहिरे का पर्दा डाल रहा है, सफलता उससे उतनी ही घृणा से दूर हट जाती है—दूसरे की सहायता करने को अनिच्छुक कृपण धनिक सहायता के भय से जिस प्रकार दरिद्र के समीप से दूर हटे रहते हैं या आत्म-सुख-परायण शरीर-सर्वस्व भोग-सुखी जिस प्रकार संक्रामकता के भय से रुग्ण व्यक्ति के प्रति घृणा के कारण नाक-भौं सिकोड़ कर दूर भाग जाते हैं। फटा-पुराना लत्ता कमर में लपेट कर रात को सो गये और सुबह जाग कर देखोगे कि तुम्हारा शरीर स्वर्ण-आभूषणों से मण्डित हो गया है,—ऐसी मिथ्या कल्पना छोड़ दो। बिना परिश्रम के कुवेर का भण्डार प्राप्त करने की दुराशा का परित्याग कर प्रचण्ड परिश्रम की निश्चित योग्यता से दिग्विजय का सङ्कल्प करो। अलादीन के आश्चर्य दीपक की बात उपन्यास की है, कठोर परिश्रम और अतुलनीय प्रतिष्ठा-लाभ ही वास्तव जीवन का चित्र है। बल-लाभ व्यायाम-सापेक्ष है, वीर्य-लाभ सङ्कल्प-सापेक्ष है, साफल्य-लाभ साहस-सापेक्ष है। अलस व्यक्ति को कब प्रतिष्ठा-लाभ हुआ है? आलस्यको विषधर भुजंग की तरह दूर हटा दो, अक्लान्त परिश्रम को सिरताज बना लो। निश्चित जान रखो—कालरा-शीतला रोग

नहीं है, आलस्य ही महारोग है ; देह का पतन ही मृत्यु नहीं है, आलस्य ही मृत्यु है। निश्चित जान लो पारे का विष हजम हो सकता है, उपदंश का विष भी पचाया जा सकता है, किन्तु आलस्य-विषके परिपाक करने की औषधि मनुष्यलोक में नहीं है। आलस्य जब तुम्हारे शरीर को शिथिल और मनको सङ्कल्प-भ्रष्ट करना चाहेगा, जान लेना, गो-शूकर-मांस की अन्न-थाली तुम्हारे होंठों में धृत हुई है। विश्व-ब्रह्माण्ड तुमसे विद्रोही हो, सारे बान्धव तुम्हें छोड़ जायँ, परवाह न करो, लेशमात्र भी चिन्तित न हो, जरा भी कातरता न दिखाओ, अपने बाहु-बल पर भरोसा रखो, सङ्कल्प की शक्ति पर विश्वास करो, आलस्य-हीनता की शक्ति पर श्रद्धावान हो। परिश्रमी को निःसंगता से क्या डर ? अनसल को अकेलेपन की चिन्ता क्या है ? कर्म ही उसका यथेष्ट संगी और सबल बाहु-युगल ही उसका यथेष्ट बन्धु है।

यथार्थ संन्यासी

आज सचमुच ही देश में सहस्त्रों सर्वस्वत्यागी परार्थ-परायण महामना संन्यासियों की आवश्यकता है। भोजन-विलासी संन्यासी नहीं, आराम-प्रिय संन्यासी नहीं, कठोर-कर्मा, मृत्यु-अग्राह्यकारी, ब्रह्मवीर्य-सम्पन्न, तेजस्वी संन्यासियों की आज अत्यन्त आवश्यकता है। अपने जीवन के असत उदाहरण से जो लोग संन्यास के अतुलनीय गौरव को विलास-

सेवी गृही की दृष्टि में भी हीन कर देता है, अपने अनाचार, अविचार और स्वार्थपरता से जो लोग पवित्र गैरिक के ऊपर साधारण की अवज्ञा और उपहास को आकृष्ट करते हैं, दल के दल वैसे धोखेबाज, ठग, प्रवञ्चक संन्यासियों से संसार का कौनसा कल्याण साधित होगा? बुद्ध, शङ्कर, चैतन्य, रामानुज की जीवन-साधना के उत्तराधिकारी होकर भी अपने अपने अनाचारों से जिन लोगों ने उनकी महिमा को कलङ्कित किया है और आज भी कर रहे हैं, क्या आज वे ही हमारे इस दुःख-दुर्दशा-पीड़ित दुर्भाग्य देश का उद्धार-साधन करेंगे? वैराग्य-साधन के अभाव से जिनकी अन्तर्दृष्टि नहीं खुलती, हृदय की उदारता के अभाव से जिनकी साम्प्रदायिक नीचतायें नष्ट नहीं हो रही हैं, वीर्य-धारण के अभाव से जिनमें शास्त्रार्थ-ग्रहण करने की शक्ति का विकास नहीं हो रहा है तथा सरलता के अभाव से जिन्हें सर्व-साधारण अपना नहीं सकते, हाय! हाय! क्या उन्हीं के स्पर्श से दग्ध भारत का उत्तप्त वक्षःस्थल शीतल होगा? साधुपन के नकली सिक्के बाजार में चलाकर हमने साधुत्व का यथार्थ सम्मान घटा दिया है, संन्यास का झूठा स्वाँग रचकर हमने यथार्थ संन्यासी को भी छोटा कर दिया है, वैराग्य का बनावटी झण्डा फहराकर हमने यथार्थ त्यागी को उसके योग्य आसन का अनधिकारी बना रखा है, भोले-भाले मनुष्यों की आँखों में धूल झोंकने के लिए हम

कौपीन कसकर या कम्बल पहनकर साधु बन बैठे हैं या उदर-पोषण के लिए फकीरी की फिक्र में संसार को ठगते-फिरते हैं, इससे हमने सर्वस्व समर्पणकारी के आप्राण उत्सर्ग का मूल्य घटा दिया है,—हे तरुण भारत ! देश के लिए, जनता के लिए आत्मोत्सर्ग करने में उद्यत होकर आज इस बात को भूल न जाना। भूल न जाना,—युगों से सञ्चित धन-भण्डार के अधिकारी तीर्थ का महन्त तुम्हारा आदर्श नहीं है, तुम्हारा आदर्श राजैश्वर्य-परित्यागी अकिञ्चन श्रीबुद्ध। भूल न जाना,—मठ या आश्रम नाम धारी तृणकुटीर या राज़-प्रासाद ही तुम्हारा गृह नहीं है, प्रयोजन होने पर वहाँ तुम्हारा कर्म-केन्द्र हो सकता है, परन्तु तुम्हारा स्थायी गृह है उस दीन दरिद्र की शून्य अन्नशाला में, तुम्हारा गृह है उस लज्जा-निवारण में असमर्थ वस्त्रहीन के आत्म-गोपन के अन्ध-कोण में, तुम्हारा गृह है भ्रातृ-विरोधी आत्म-विद्वेषी निरन्तर-कलह-परायण सहोदरों के रक्ताक्त अंगतल में और सर्वोपरि तुम्हारा गृह है उन्हीं के चिर-साहचर्य में—जो अज्ञान से आत्ममर्यादा भूल गये हैं, अपशिक्षा से मनुष्यत्व खो बैठे हैं और बिन्दु भर सहानुभूति के अभाव से, रत्तिभर आदर-प्यार के अभाव से, तिलभर सहृदयता के अभाव से जो अशुभ और अकल्याण को परम प्रिय समझकर अपने ही दाँतों अपना अंग काट रहे हैं तथा अपने पैरों में स्वयं कुल्हाड़ी मार रहे हैं।

प्यार का लक्षण

क्या देश को प्यार किया है ? क्या जाति को प्यार किया है ? क्या दुःखी को प्यार किया है ? क्या अधम पतित अनाथ अशरण को प्यार किया है ? क्या भगवान को प्यार किया है ? क्या भगवान के प्रेम-पात्र को प्यार किया है ? जिसके द्वारा भगवान का काम होगा, क्या उसे प्यार किया है ? तुम्हारी बात से मैं सन्तुष्ट न हूँगा—आओ, लक्षण मिलाकर निर्णय किया जाय। जिसे प्यार किया है, क्या उसके लिए रोते-रोते तुम्हारी आँखें फूल गयी हैं ? फेफड़े फटे हैं ? क्या हर सांस में तुम उसके लिए असहनीय वेदना से व्याकुल होते हो ?

बन्धन की मुक्ति

कुसंस्कार की नकेल तोड़ने की शक्ति मनुष्य में है। समुद्र की लहर बालू के बाँध को अनायास तोड़ सकती है। परन्तु तोड़ने के लिए प्रयास चाहिये, निरन्तर प्रयत्न चाहिये।

बात बनाम काम

बात के लिए बातें बहुत हो चुकी हैं, अब काम के लिए बात चाहिये। जो बात केवल कल्याण के कामों के आकर्षण से अभिव्यक्त होती है और कल्याण के काम को ही अपनी कोख में दस मास परम यत्न से धारण कर यथा-समय प्रसव करती है,

वैसी बात चाहिये। जो बात शून्य-गर्भ बह्वास्फोट मात्र में ही पर्यवसित नहीं होती, उस अव्यर्थ अलंघनीय अमोघ बात की ही आज आवश्यकता है।

तुम जगे हो या नहीं

'मेरे न जगने से देश नहीं जगेगा, मेरे न उठने से देश नहीं उठेगा'—ऐसा विश्वास अन्तर में भरा न रहने से कोई देश-सेवा का अधिकारी नहीं हो सकता। और कोई जगा है या नहीं, और कितने आदमी अभी निद्रा में अचेतन हैं, उसके विचार से तुम्हें क्या प्रयोजन ? देश-माता तुमसे उसका हिसाब नहीं चाहतीं। वे सुनना चाहती हैं, तुम जगे हो या नहीं, तुम्हारी आँखों में निद्रा की जड़ता लेशमात्र भी नहीं है, तुम्हारे सबल पेशी-बहुल शरीर में मोह की जड़ता अब नहीं है, तुम्हारे सरस सतेज मन में दुःस्वप्न की विभीषिका अब नहीं रह गयी है,—केवल इतना ही वे तुम्हारे अखण्ड आत्म-विश्वास के भीतर देखना चाहती हैं। तुम्हारे प्रचण्ड-भास्कर-सदृश रक्तिम कटाक्ष में वज्र-विद्युत् की सूची-सूक्ष्म क्रीड़ा देखकर वे समझना चाहती हैं कि और किसी के न जागने पर भी तुम अवश्य जागे हो। तुम्हारे विलास-विमुख सहनशील शरीर में सहनातीत दुःख के दारुण आघात-चिह्न अमिट काली रेखाओं में अङ्कित देखकर वे जानना चाहती हैं कि तुम जागे हो। अमा-निशि के घनान्धकार में प्रेत-मूर्तियों के ताण्डव-कलरव

में तुम्हारे निडर निःशङ्क हृदय अचञ्चल स्पन्दन का अनुभव कर वे जानना चाहती हैं कि तुम जागे हो।

देश-साधना

अपना हृदय, अपना मस्तिष्क, अपनी चेष्टा के नाम से कोई पृथक वस्तु है, ऐसा भान नहीं रहना चाहिये। देश और जाति की सेवा ही मैं-मय हो; वही मेरा ध्यान, वही मेरी धारणा, वही मेरा धर्म और वही मेरा कर्म हो। किसी मनुष्य को एक पृथक मनुष्य के रूप में प्यार न करूँ, उसे मैं अपने अंश रूप से ही ग्रहण कर सकूँ। दुर्भिक्ष-दमन में अग्रसर होकर मैं यह न समझूँ कि मैं परोपकार कर रहा हूँ, बल्कि अपने ही बृहत्तर उदर की भूख मिटाने के लिए मैं व्याकुल होकर उस दुर्भिक्ष-पीड़ित स्थान में दौड़ता जा रहा हूँ, यही भाव मेरे सम्पूर्ण अन्तःकरण में निरन्तर विराजित हो। देश-व्यापी जल-स्रावन में या आँधी-पानी के भीतर मैं अपने बृहत्तर प्राण को विपन्न देखूँ, महामारी के फैल जाने से मैं अपने बृहत्तर जीवन को मरणासन्न देखकर शङ्कित होऊँ। व्यक्ति-बुद्धि मेरे मन से बिल्कुल मिट जाय, समष्टि-बुद्धि मेरे भीतर पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो जाय।

शक्तिमान की इच्छा

इतने दिनों तक नहीं कर सके हो इसलिए जीवन-भर में भी नहीं कर सकोगे, यह किसने बताया? तिल तिल करके तुम्हें

शक्ति का सञ्चय करना होगा—जिस इच्छा-शक्ति से प्रतिहत होकर फौलाद टेढ़ा हो जाता है, वज्र टूट जाता है, वैसी इच्छा-शक्ति तुम्हें युग-व्यापी तपस्या के बल प्राप्त करनी होगी। मरुस्थल में भी मैंने पेड़ देखे हैं, समुद्र में भी मैंने द्वीप देखे हैं, पहाड़ों में भी मैंने झील देखे हैं ; तृष्णा से जहाँ छाती फटती है, मरीचिका देखकर जहाँ भटक जाना पड़ता है, सहारा के उस अनन्त बालू के विस्तार में भी क्या सुशीतल जल की मरु-प्रवाहिनी नहीं है ? नयनानन्दकर मरुकुञ्ज नहीं है ? जलधि का जल जहाँ अतल है, उसी की छाती पर क्या मणि-माला के समान अगणित द्वीपपुञ्जों को तैरते नहीं देखा है ? चारों ओर जहाँ पथ अलंघ्य और दुर्गम है, उस पर्वत के वन्धुर वक्षः-स्थल पर झील के अमल सलिल में क्या शत शतदल कमल खिलते नहीं हैं ? जिसे इस समय नीरस समझते हो, उससे भी शक्कर निकालनी होगी। आत्म-शक्ति का वन्ध्यत्व मिटाकर प्राणान्त साधना से उसे सन्तानप्रसू कर लेना होगा। जिसे असम्भव समझकर सहस्रों ने छोड़ दिया है, उसे सम्भव करने के लिए तुम्हें कटि-बद्ध होना होगा। तुम मनुष्य हो, इस बात को न भूलना। अव्यर्थ कर्म-प्रचेष्टा से विश्व-विघ्न विदूरित करो। भूल न जाओ—शक्तिमान की इच्छा के सामने कारागार का प्राचीर भी धँस जाता है, पर्वत-शिखर भी झुक जाता है।

जिम्मेवार कौन है ?

दूसरों पर दोष न लगाओ भया, तुम्हारे अधःपतन के लिए अकेले तुम्हीं जिम्मेवार हो, तुम्हीं दोषी हो। प्रतिद्वन्द्वी के हृदय में दया या ममता का स्थान कहाँ है ? सबल कभी दुर्बल के सामने हार मानना नहीं चाहता। उसके अन्तर्निहित आत्म-विश्वास उसे अखण्ड प्रभुत्व में जागृत रखता है। किसी के सामने वह सिर नहीं झुकायेगा, किसी के सामने हीनता स्वीकार नहीं करेगा, दम्भ, दर्प, गर्व से सबल भुजाओं के द्वारा वह विश्व की विजय करके उसका निःशेष भोग करना चाहेगा ही। इसके लिए उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता। दोषी ठहराओ अपने को, धिक्कार दो अपनी हार माननेवाली असीम दुर्बलता को, घृणा करो अपनी आत्म-सम्मानवर्जित घृण्य भिक्षा-वृत्ति को—जो प्रतिक्षण तुम्हारे भ्रष्टावशिष्ट मनुष्यत्व को असीम निराशा से, पुञ्जीभूत आत्म-अविश्वास से, दास-सुलभ परनिन्दा-प्रचार से मिथ्या बना देती है।

यथार्थ एकता

बात की एकता एकता नहीं है, यहाँ तक कि कर्म की एकता भी हर समय एकता नहीं होती। एक ढंग से शिखा झटकारने या दाढ़ी हिलाने से एकता नहीं होती। जिनका ध्येय एक है,

आदर्श एक है, केवल उन्हीं में एकता स्थापित हो सकती है। एक प्रकार के कर्म करने वालों में ही यथार्थ एकता हो सकती है, ऐसी बात भी नहीं है। एक-कर्मी होना और सम-कर्मी होना पृथक बात है। जो लोग विभिन्न उद्देश्यों के द्वारा परिचालित होकर एक ही कर्म का अनुष्ठान करते हैं, वे एक-कर्मी हैं और जो लोग एक ही उद्देश्य के द्वारा परिचालित होकर एक ही कर्म का अनुष्ठान करते हैं, वे सम-कर्मी हैं। सम-प्राण, समभाव, सम-चित्त और समबुद्धि हुए बिना कोई सम-कर्मी नहीं हो सकता। फिर समादर्श न होने से सम-प्राणता या सम-चित्तता आ नहीं सकती। देश भर में क्या एक ही बात को लाखों व्यक्तियों ने नहीं दुहराया है? क्या एक ही काम में लाखों व्यक्ति नहीं लगे हैं? परन्तु उससे प्रकृत कल्याण कभी संभव न होगा—यदि सभी बातें और सभी कर्म एक ही आदर्श के द्वारा परिचालित न हो। आदर्श एक होने से मनुष्य यदि एक-कर्मी या एक-वाक्य न हो तो भी कुछ हानि नहीं है। आदर्श की एकता ही है एकता का प्राण।

अपूर्ण-चिन्ता-प्रसूत कोई एक कर्म-सूची तैयार कर जनता को एक ही कर्म के जूए में जोत देने से ही एकता आयेगी, ऐसा समझना भूल है। सभी को एक ही कर्म में आग्रहवान और यत्नशील करने की चेष्टा भी वृथा है। यदि कोई सभी के मनो-दर्पण में एक ही आदर्श का चित्र खींचकर भी उनके अपने-

अपने मापदण्ड के अनुसार यथोपयुक्त कर्म तौल लेने की स्वाधीनता दे सकें तो वही यथार्थ एकता की प्रतिष्ठा कर सकेंगे। असली आदर्श कभी हीनांग या सङ्कीर्ण नहीं हो सकता। इसलिए उसके अनुयायी और अनुकूल कर्म या कर्म-पन्था का भी संख्या-निर्देश कोई गिनती गिनाकर दे नहीं सकता। जो विराट और विशाल है, उसे प्राप्त करने में मनुष्य विचित्र प्रयास से आत्म-जीवन सार्थक करेगा। प्राण-वल्लभ श्यामसुन्दर का अंगस्पर्श पाने के लिए कोई विषण्ण आनन में धूल में लोटेगी, कोई व्याकुल होकर माधवी-कुञ्ज में भटकेगी, कोई उनका चरण-चिह्न खोजते हुए यमुना-तट के कदम्ब-मूल में आ खड़ी हो जायेगी। जो जैसे हो सके अपने प्राण-प्रिय की खोज कर लेगी। ऐसा वैचित्र्य है इसीलिए तो प्रेम का मूल्य कभी न घटेगा। जहाँ हम सारी विचित्रताओं को गला घोंट कर मार डालना चाहते हैं और पशुबल से सबको एककर्मा करना चाहते हैं, वहाँ यथार्थ एकता कभी प्रतिष्ठित न होगी, एकता के स्वाँग की ओट में घोर अनैक्य ही राजसम्पद में आत्मप्रतिष्ठा कर लेगा। एकलक्ष्यता लाखों विचित्रताओं के भीतर से भी अटूट रह सकती है और रहेगी, इसीलिए संसार के सभी मनुष्य कभी हिन्दू-मुसलमान-बौद्ध-ईसाइयों में से किसी एक धर्म के अनुयायी नहीं हो गये और न होंगे; और इसीलिए संसार में सदा ही नये-नये धर्ममतों का उदय और सम्प्रदायों

का प्रसार होता रहेगा। अपने घेरे में रहते हुए भी मनुष्य दूसरों के साथ सम-चित्त, सम-प्राण और समादर्श हो सकता है और होगा। समादर्शता का आत्मा ही है स्वाधीन इच्छा। इस स्वाधीन इच्छा के प्रतिहत होने से धरती में केवल कपटता, खलता और मिथ्या की ही खेती होगी, मिथ्या ही फल-फूलों से सुशोभित होगी और मिथ्या के ही शत-सहस्र बीजांकुरों से सारी सृष्टि छा जायगी।

बड़ा होने का पथ

बड़े होने की आकांक्षा बलपूर्वक मन में प्रतिष्ठित करा देने से और बड़े काम के भीतर मन को निर्दयी की तरह अनुप्रविष्ट करा देने से मनुष्य अपने आप ही बड़ा हो जाता है। बड़ा होकर बड़े काम में उतरूंगा, धनी होकर दान करूंगा, राजा बनकर दिग्विजय करूंगा—ऐसा सोचने से कभी आदमी बड़ा नहीं हो सकता। दैव आकर तुम्हें बड़ा बना देगा, ऐसा पुरुषत्वहीन पंगु विश्वास मन के कोने में भी न रखना। असीम कर्म की सहायता से, अथक अध्यवसाय के बल संसार का श्रेष्ठ गौरव छीन लाना होगा ; देवता या मनुष्य से भिक्षा माँग कर उसे कमाया नहीं जा सकता। एकमात्र दुर्दम्य आकांक्षा को साथ लेकर निडर हो कर्म के पथ पर अग्रसर होते चलो। जिनका नाम सुनने पर लोग श्रद्धा से सिर नहीं झुकाते, जिन्हें देखने से सम्मान के साथ रास्ता नहीं छोड़ देते, वैसा तुच्छ

मनुष्य होने की इच्छा न रखो। देश भर में श्रेष्ठतम रूप से गण्य होना होगा, देश भर में सिर ऊँचा किये खड़ा होना होगा—केवल किसी सम्प्रदाय के भीतर ही नहीं—सभी के भीतर बड़ा होना होगा। जनता ने जिसे नहीं पहचाना, नहीं माना, नहीं जाना, वैसा होने की इच्छा न रखो। जिसकी मृत्यु से समस्त देशवासी शोक से आप्लुत नहीं हो जाते, वैसा तुच्छ मनुष्य होनें का अपमान सहने की इच्छा न करो। जैसे बने, तुम्हें बड़ा होना ही होगा ; जितने दिनों में हो, तुम्हें सिर ऊँचा किये गौरव के साथ खड़ा होना हो होगा। इसी प्रेरणा से सदा सन्नद्ध रहना। जीते-जी हो या मरकर ही हो, जनगण के वरेण्य तुम्हें होना ही होगा। सुख से हो या दुःख से, विश्व के पूज्य तुम्हें बनना ही होगा। अकलंक पवित्रता की पुण्य-मयी वेदिका पर तुम्हारे गगनस्पर्शी मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा करनी ही होगी। शत-शत विघ्नों को पैरों तले दबाकर वज्र-कंठ से घोषणा कर दो—"मैं अवश्य बड़ा हूँगा, मैं अवश्य मनुष्य बनूंगा, किसी विपत्ति की परवाह न करूंगा और न किसी बाधा के सामने सिर ही झुकाऊँगा।"

कर्म-रहस्य

क्षणिक उत्तेजना से जो लोग समरांगण में कूद पड़ते हैं, उन्हें एक बार सोचने का भी अवसर नहीं मिलता कि, किसके इंगित से वे अपने अमूल्य जीवन को तृण के समान समझ सके हैं

या उनके आत्मत्याग के भीतर से किस नर-नारायण की पूजा होगी। परन्तु जो लोग बिन्दु-बिन्दु करके हृदय का रक्त बहाते हैं और हरएक रक्त-बिन्दु के साथ विश्व-हित की अकपट इच्छा प्रेषित करते हैं, उन्हें अज्ञात नहीं रहता कि, किसके आदेश को सिर झुका कर मान लेने के लिए उन्होंने असीम कष्टों का स्वागत कर लिया, किसकी अलंघ्य शुभ इच्छा ने उनके जीवन को असाधारण लाञ्छनाओं के भीतर से महिमान्वित कर दिया। उसी प्रकार यदि संसार की सेवा करना चाहो तो बिन्दु-बिन्दु करके अपने को सौंप देना होगा। क्षणिक उत्तेजना से कर्तव्या-कर्तव्य का विचार न करके जिस किसी एक कार्य का अनुष्ठान करने से काम न चलेगा। संसार के हीन बन्धन से यदि अपने को मुक्त करना चाहो तो किसी एक उच्छ्वास के नीचे डूब न जाना। थोड़ा-थोड़ा करके अपने को वियुक्त कर लेते रहो। जो तुच्छ है, बहुगुणित होने पर वह भी ग्राह्य हो सकता है; पर गर्मी की आँधी के उठने में ही कितनी देर और रुकने में ही कितनी देर ?

देश का काम

उत्तेजना से संगठन नहीं होता, होता है ध्वंस। उच्छ्वसित प्रवाह से दोनों तट टूटते जाते हैं, पर धीर प्रवाहिणीनदी गहरी रहती है। यदि देश का काम करना ही चाहते हो तो वह काम

होगा—अग्नि जलाने की शक्ति से नहीं, बल्कि प्रज्वलित अग्नि-पिण्ड को अनायास हथेली पर धारण करने के सामर्थ्य से। वे ही यथार्थ कर्मी हैं, जो धीर, स्थिर, चिन्ताशील और सहिष्णु हैं।

आस्तिक और नास्तिक

"ईश्वर नहीं है"—इस बात का जो लोग प्रचार करते हैं, उनके विरोध में शास्त्र-प्रमाण उपस्थित कर सकने से ही मैं आस्तिक नहीं हो जाता। सड़क की चौमुहानी पर खड़ा होकर 'ईश्वर हैं'—यह बात ऊँचे स्वर से घोषित करने पर भी मैं आस्तिक नहीं बन जाता। तिलक लगाने, चुटिया रखाने, गेरुआ पहनने या रुद्राक्ष-माला धारण करने से ही यदि मनुष्य आस्तिक होता तो संसार में इतना असन्तोष नहीं दिखाई पड़ता, इतनी हाय-हाय न सुनायी पड़ती और न कोई अपने कुकर्मों का फल भोगते हुए ईश्वर को ही कोसता। आस्तिक व्यक्ति क्या कभी दुःख देखकर डरता है? अपने हृदय के हर एक स्पन्दन के साथ वह अपने प्राणों से भी प्रिय भगवान का अनुभव करता है, हर एक निःश्वास में वह उन्हीं का स्पर्श पाता है। उसके भगवान सुख, दुःख, सम्पद, विपद, आलोक, अन्धकार सर्वत्र सर्वदा विद्यमान है। इसलिए वह अन्त्यज या हरिजन, चण्डाल या पासी, भंगी या मेहतर किसी से भी घृणा नहीं कर सकता, बल्कि सभी को वह अखण्ड नारायण का खण्ड-विग्रह

जानकर श्रद्धा से सेवा-परायण होता है। करोड़ों नर-नारियों की छाया तक को हम अपवित्र, अस्पृश्य समझ कर तीव्र घृणासे उन्हें दूर रखकर चलते हैं—तो हमारी आस्तिकता कैसे रह सकती है? हमारे ही भाई-बहन जब अज्ञान के आनन्दहीन अन्धकार में पथ न पाकर मृत्यु के कराल गह्वर में फिसल पड़ते हैं, उस समय भी हम तर्क-युद्ध से विश्व की विजय करते रहते हैं—क्या तब भी हम आस्तिक हैं? हमारे ही अपने परिजन भूख से तड़प-तड़प कर आँखों के सामने मरते जा रहे हैं और हम निश्चिन्त चित्त से शिश्नोदर की सेवा में डूबे हुए हैं—क्या तब भी हम आस्तिक हैं? बनावटी आस्तिकता का सारा अभिमान सूप की हवा से उड़ाकर जनता-जनार्दन की सेवा में अपना जीवन बिना सौंपे कभी यथार्थ आस्तिकता नहीं आयेगी।

छोटे कौन?

जिन लोगों ने हमें अन्न देकर पुष्ट किया है, सम्मान देकर बड़ा बनाया है, उन्हें हमने पशु से भी नीच समझ रखा है, अछूत समझ कर घृणा से दूर हटा दिया है। बोलो तो, छोटे कौन हैं? वे या हम?

उत्तिष्ठत! जाग्रत!

देश को उत्थित करने के पहले स्वयं उत्थित हो जाओ। देश को जगाना हो तो पहले तुम स्वयं जागो। विलास-लालसा

की सुख-शय्या पर शयन कर ऐसा न सोचो बन्धु, तुम्हारी बाँसुरी की ध्वनि से यमुना उल्टी बहेगी। आत्म-सुख के घुन-लगे बाँस की बाँसुरी से तुम कितने ही सुर क्यों न अलापो भाई, निश्चय जान लो, तुम्हारी पुकार से एक भी व्रजवासी का प्राण आकुल न होगा,—भोग-लिप्सा से ही तुम्हारा सारा प्रयत्न विफल हो जायगा। जिन्हें तुम मोहित करना चाहते हो, जान लो बन्धु, मोहाविष्ट का प्रभाव उन्हें अभिभूत नहीं कर सकेगा ; जिन्हें तुम अपनाना चाहते हो, जान लो मित्र, स्वार्थी के हृदय का स्पर्श पाना वे नहीं चाहेंगे। जिनके तुम प्रति-निधि बनना चाहते हो, ऐसा कभी न सोचो भाई कि तुम्हारे भाषण का प्रभाव देखकर वे तुम्हारे ऊपर विश्वास स्थापित करेंगे। क्या उनके कल्याण के लिए तुमने अपने कल्याण को तुच्छ समझना सीखा है ? क्या उनके उद्धार के लिए अपनी मुक्ति का अस्वीकार कर सके हो ? तुम जब पूड़ी-मिठाई से पेट भरते हो, गो-दुग्ध से नहाते हो, बेदाने के रस से प्यास बुझाते हो, तब क्या कभी क्षण भर के लिए अपने देश के लक्ष-कोटि भाई-बहनों की क्षुधा-क्लिष्ट करुण-मूर्ति स्मरण कर आँसू की एक बूँद भी गिरायी है ? यदि ऐसा न कर सके हो तो स्वदेश-प्रेम का स्वाँग क्यों रचते हो ? तो इस विश्व-प्रेम का आडम्बर क्यों कर रहे हो ? तुम्हारी चञ्चल जिह्वा आज स्तब्ध हो जाय। पहले स्वयं त्यागी बनना सीखो, पहले अपने

भीतर के निद्रित मनुष्यत्व को जगा लो, नहीं तो तुम्हारे ऐसे कपटी के स्वदेश-प्रेम से, तुम्हारे ऐसे प्रवञ्चक की विश्व-प्रीति से देश और जगत् का हानि-लाभ क्या है ?

जीवन की सफलता

स्तुतियों की वकुल-वर्षा तुम्हारे शरीर को नख से शिख तक स्नावित कर सकती है, परन्तु वही तुम्हारी सफलता का प्रमाण नहीं है। लोग तुम्हें अभिनन्दन की मालाओं से संवर्धित कर सकते हैं, परन्तु वह भी तुम्हारी सार्थकता का प्रमाण नहीं है। यथार्थ में ही तुम्हारा जीवन सफलता और सार्थकता से मण्डित हुआ है या नहीं, उसका अकाट्य प्रमाण तुम्हारे अपने अन्तर में ही विराजमान है। वहाँ प्रवेश करो और अपने से ही पूछो—तुम्हारे अप्रकाश्य जीवन की असली मूर्ति की पूजा की जा सकती है या नहीं। ऐसा न समझो कि सब लोगों के मिलकर ढिंढोरा पीटते हुए तुम्हारे त्याग की महिमा घोषित करने से ही तुम त्यागी बन गये। एकान्त में अपने हृदय से एक बार पूछ कर देखो, सचमुच ही वह अपने को सबके लिए वितरित कर देने में अकृपण रहा है या नहीं। अपने सहकारियों, मुखापेक्षियों या सरलप्राण सहज-विश्वासियों की प्रशंसा पाकर ही न समझो कि तुम प्रशंसा के योग्य हुए हो। हो सकता है कि, तुम्हारी जीवन-कथा इतिहास के पत्रों पर सोने

के अक्षरों में लिखी रहेगी या तुम्हारी समाधि के ऊपर सूक्ष्म स्मृति-मन्दिर निर्मित होगा, परन्तु उससे यह नहीं कहा जा सकता कि, तुम यथार्थ में ही मनुष्य और महान् हो गये हो; क्योंकि बाहरी जीवन की अपेक्षा भीतरी जीवन ही मुख्य है। भीतर यदि महान् न हुआ तो बाहरी गौरव का क्या मूल्य है?

सार्थकता

मैं जान गया कि, तुम्हारी पलकों की ओट से रूप की चाँदनी छिटक रही है, तुम्हारे मुख की मुस्कान संसार में स्वर्ग की सुषमा फैला रही है, तुम्हारे शरीर की शक्ति जनता की विस्मय-दृष्टि आकर्षित कर रही है, तुम्हारी मेधा-मनीषा ने सबके बुद्धि-गौरव को ढाँक दिया है या तुम्हारे अतुल ऐश्वर्य ने सोने के पत्तरों से संसार को मढ़ दिया है, परन्तु उससे मैं क्या करूंगा, जिसने भगवान के काम में लगना नहीं चाहा? हम ब्रज-ललनाएँ हैं, हमें अपने सब कुछ ब्रजनन्दन के ही चरणों में सौंप देना होगा। जिस रूप-राशि के अहंकार से दिन में सौ बार फूल जाता हूँ, उसे तो उन्हीं को देना होगा! जिस शरीर की शक्ति के अभिमान से संसार को मैं गिनती में भी नहीं लाता, वह भी तो उन्हीं के लिए है! मेरी मेधा, मेरी मनीषा, मेरा सुख, मेरी सम्पदा सभी तो उन्हीं की देन है; सभी के भीतर वह अपने चञ्चल चरणों से नूपुर बजाकर घूम

रहे हैं ! यह जो मेरी यौवन-जल-तरंग है, यह तरंग मेरे लिए नहीं है, मेरे वित्तापहारी, हृत्तापहारी हरि इस जलकल्लोल में नौका-विहार कर रहे हैं। यह जो मेरी हँसी का फौव्वारा छूट रहा है, उसके झरने की ध्वनि से वह अपनी प्यारी बाँसुरी बजा रहे हैं और बजा-बजाकर मुझे प्रेम के पुलक से पुलकित कर रहे हैं। वही मेरे सब कुछ हैं, वही तो मेरे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ध्यान, धारणा, विद्या, बुद्धि सब कुछ हैं। जिस किसी चीज का भी मैं गर्व करता हूँ, सभी तो अकेले उन्हींके हैं, अन्य किसी के नहीं। यदि अपने सब कुछ मैं उनके चरणों में न्योछावर न कर सका तो इन सबों से क्या लाभ ? उनके प्यार की चीजों को यदि उन्हींको मैं न सौंप सका तो इस रूप की गठरी, गुण की गठरी, मान की गठरी और गौरव की गठरी ढोकर कहाँ ले जाऊँगा, कितने दिनों तक और कैसे ढोता फिरूँगा ?

पुरातनी कथा

वर्तमान का विचार करते हुए अतीत की एकदम उपेक्षा कैसे की जा सकती है ? विगत, विस्मृत बात की याद आने से आज यह विदग्ध वर्तमान देखकर आँसू कैसे संभालूँ ? ऊषा के घूँघट के भीतर से स्वर्ण-रेखाने भारत के मुग्ध नयनों में अमृत की स्निग्ध ज्योति का अक्षय अञ्जन लगा दिया था, मुक्त विहगकुल की आकुल काकली ने कर्ण-रन्ध्र में अमरता की

मुक्त धारा का वर्षण किया था। उसी समय उसने पुलक-स्पन्दित छन्द में गाया था,—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्—

'गम्भीर अन्धकार के उस पार से मैंने उस परम पुरुष को जान लिया है, जो महान् और ज्योतिर्मय हैं।' दूरागत वंशी-ध्वनि सुनने के लिए तान-मुग्ध कृष्णसार मृग जिस प्रकार कान उठाये खड़ा रहता है, उसी प्रकार अभिनिविष्ट श्रवण में प्राचीन साधक ने सुना था—

मामेकं शरणं व्रज—

'मेरी ही शरण लो।' सौन्दर्य के शिशु भारत-ऋषि के समाधि-शुद्ध अन्तःकरण में जीवात्मा के साथ परमात्मा का एक अच्छेद्य अनतिक्रम्य सम्बन्ध उपलब्ध हुआ था। उन्होंने जाना था—अपने अस्तित्व को परमात्मा की अनन्त सत्ता में निःशेष रूप से निमज्जित कर देना ही जीवन की परम सार्थकता है। उन्होंने समझा था—इस महानिमज्जन की चेष्टा की सफलता के मूल में हैं—निरहंकार, फलाकांक्षा-रहित, अकपट आत्मत्याग और सारी कर्म-प्रचेष्टाओं में अमिश्र भगवद्बुद्धि। इसीलिए उन्होंने अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को एक भागवती प्रेरणा से ओतप्रोत देखा था, देखकर वे आकुल और विह्वल हुए थे, कभी अपने आनन्द में स्वयं डूबकर अपने

को भूल गये थे; फिर कभी उन्होंने उस आनन्द का मधुमय समाचार भाव-गद्‌गद्-कंठ से विश्व-वासियों के कानों में पहुँचाया था—इसीलिए वे कवि हैं और इसीलिए वे ऋषि हैं। अपार दुःख में भी क्या उनकी वह प्रेरणा उमड़ न उठी थी? असहनीय यातना में और असीम लाञ्छना में क्या उनकी सत्योपलब्धि प्रकटतर न हुई थी? अन्धकार ने ही उन्हें प्रकाश का सन्धान बतला दिया था, दुःख ने ही उनका सुख-सौध बना दिया था। इसलिए उस दिन अभाव रहते हुए भी आज की यह भीषण हाय-हाय नहीं थी, क्षुधा रहते हुए भी व्याकुल रुदन नहीं था, प्रतियोगिता रहते हुए भी आज का यह देश-भर में फैला हुआ उष्ण दीर्घ निःश्वास नहीं था, बलवान के रहते हुए भी दुर्बल की लाञ्छना का विगलित अश्रु प्रवाह नहीं था। अपने ही भीतर उन्होंने भगवान को पाया था, इसलिए अभाव-पीड़ित होकर भी वे मुरझाते नहीं थे, दारिद्र्य से झुक न जाते थे, प्रतिद्वन्द्विता में पराजित होकर भी वे पराङ्मुख नहीं होते थे, सत्य का सम्मान अक्षुण्ण रखने के लिए वे क्रुद्ध सिंह की तरह डट जाते थे और सैकड़ों दुर्बलताओं के भीतर भी विश्वास के वीर्य से महाशक्ति का उन्मेष लाते थे।

मनुष्य कहाँ मिले ?

क्या तुम मनुष्य पहचानना चाहते हो भाई? यदि चाहते हो तो असीम उत्साह से कर्म-समुद्र में कूद पड़ो; जो लोग यथार्थ

कर्मी हैं, उनकी छाती के पास जाकर खड़े हो जाओ। मनुष्य बात से पहचाना नहीं जा सकता। बारांगना की तरह प्रेम की भाषा कौन जानता है? नाटक के भीमसेन को मौखिक शौर्य-वीर्य में कौन हरा सकता है? परन्तु वहाँ कोई विश्वास-स्थापन नहीं करेगा। बल्कि जहाँ मनुष्य ने बात को संयत कर काम को बढ़ाया है, वहीं जाओ। जहाँ कर्म के कठोर पीड़न से हृदयों में रावण की चितावह्नि जल रही है, केवल वही यथार्थ मनुष्य मिलेगा। जहाँ देखोगे कर्तव्य-पालन करने में विश्वनाथ की मन्दिर-चूड़ा टूट गयी है, केवल वहीं यथार्थ मनुष्य मिलेगा। सैकड़ों बाधा-विघ्नों के भीतर भी जहाँ उत्थान की चेष्टा है यथार्थ मनुष्य वहीं रहता है। वह सड़क का कंकड़-पत्थर नहीं है कि जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ेगा।

अङ्गाभरण

क्या वह दिव्यनयना नहीं हैं, आँखों में अञ्जन न रहते हुए भी जिनका अश्रु प्रवाह पतितों की सारी मलीनता धोना जानता है? यथार्थ में ही क्या वे आभूषण-हीना हैं, जिनके चरणों में नूपुर की मधुर ध्वनि न बजने पर भी करुणा-कल्लोलिनी जिनके चरणों को चूम कर चली जाती है? दरिद्र के रूप में जो लोग ज्वलन्त जाग्रत जनार्दन हैं, उन्हें देखकर जिनके हृदय-कुञ्ज में स्नेह-मञ्जरी खिल उठी, जिनके स्तन-युगल में सन्तान

का सिहरन निमेष भर के लिए स्पन्दित हुआ, 'आओ मेरे प्यारे, आओ मेरे प्राण, आओ मेरे आँखों के पुतले'—कहकर जो दीनातिदीन को भी परम प्रेम से छाती से लगा लेती है; क्या वे आभूषणहीना हैं? करोड़ों पुत्र-कन्याओं के दुर्बल बाहु-युगल जिनके गले में लिपटे हुए हैं, सोने के हार से उनका क्या प्रयोजन? संसार भर के भूख से तड़पने वाले सन्तानों को जो अपने हाथों से एक ग्रास अन्न दे सकी हैं, सुवर्ण के कंगन से उनका कौन-सा गौरव बढ़ेगा? जननी की स्नेह-स्निग्ध करुण दृष्टि से एक बार भी जिन्होंने हमारी ओर देखा है, हमारी इस ठठरी-सी क्षीण मूर्तियों ने जिनके हृदय में दीर्घ निःश्वास की आँधी बहायी है, वे कैसी सुन्दर और कैसी मधुर हैं, यह मैं कैसे कहूँ?

शान्ति

जो शान्त हैं, शान्ति उन्हीं को है। जो अशान्त हैं, उन्हें शान्ति कहाँ? जो अतृप्त वासना की अदम्य ताड़ना से अशान्त होकर लगातार दौड़-धूप कर रहा है, उसमें शान्ति है—यह बात मैं कैसे मान लूंगा? कितना ही बड़ा अभाव क्यों न आये, दुःख कितना ही न बढ़े, उसे स्वेच्छा से वरण कर लेने का साहस यदि मेरे भीतर न हो तो अपने को शान्त कहकर परिचित कैसे कर सकता हूँ? सहन करने का मानसिक बल अटूट रहेगा तभी तो मैं शान्त हो सकूँगा। यदि सभी

वेदनाओं का स्वागत कर सकूँ, यदि सभी बोझों को सिर पर धारण कर सकूँ तभी तो मैं शान्ति के अमृत-रस का स्वाद लेकर सौभाग्यवान हो सकूँगा। क्योंकि मनुष्य का मन जब भीतर के रस में डूबे रहना चाहता है, तभी वह बाहरी कशाघातों पर ध्यान नहीं देता। रूप की धारा, रस की धारा, मृदु-मन्द स्रोत से बहती चली जा रही है, बाहर विक्षिप्त दृष्टि से हम उस स्रोतोधारा के विभिन्न विकास विभिन्न रूप से देखकर कभी चञ्चल, कभी सन्दिग्ध हो पड़ते हैं और सुख-दुःख का मिथ्या संस्कार गढ़कर कभी हँसते और कभी रोते हैं अथवा नित्य-रसामृत-स्वरूप उस सत्य-सुन्दर भगवान के अखिल अस्तित्व में अविश्वास करके मिथ्या युक्ति के कल्पित इंधन से दारुण अग्निकुण्ड जलाकर पतंगों की तरह उसी में जल मरते हैं। वह जो दिखाई पड़ी—इन्द्रधनुष की तरह सात रंगों की दीप-मालिकाओं से घिरी हुई सुख की कोमल कमनीय मूर्ति, क्या उसे इस जीवन के बदले में भी नहीं प्राप्त कर सकूँगा? फिर वह जो विरूप विभीषिका का विषण्ण उपहास लेकर शनि-ग्रह की तरह धूम्रलोचन राक्षस विकराल मुँह बाकर दौड़ता हुआ आ रहा है, क्या उसके क्रोध से मैं आत्मरक्षा नहीं कर सकूँगा? स्वप्न के आवेश में ऐसी ही तरह तरह की चिन्ताओं से व्याकुल हो जाता हूँ, परन्तु एक बार भी नहीं विचारता कि, अब तक जो इतना रोया, इतना माँगा, उस रोने की सार्थकता क्या है

और कितनी है ? एक बार भी तो मैं नहीं कह सका—'हे मेरे सुनहले स्वप्न, तुम चाहो तो अपनी सुनहली किरणें लेकर दूर ही हटे रहो, मुझे तुम्हारे ऊपर लोभ नहीं है, तुम्हें पाने के लिए मैं रोना नहीं जानता। यथार्थ प्रकाश-पुञ्ज लेकर यदि तुम आ सको तो जिस दिन चाहो आना, फिर जिस दिन चाहो मुक्त हर्ष से चले जाना—मैं तुमसे प्यार भी नहीं करूँगा और घृणा भी नहीं ; क्योंकि जिनकी योनि-पीठ से होकर तुम यहाँ आकर मोहिनी रूप और हाव-भाव से मन को मतवाला बना रहे हो, उनके चरण-कमल का अशोक-स्पर्श निश्चित रूप से मैंने प्राप्त कर लिया है।' एक दिन भी तो मैं कह नहीं सका कि,—'हे मेरे सभी सुखों के शत्रु, हे मेरी सभी साधनाओं की बाधा, तुम्हारी उस विकट रक्त-दृष्टि को और भी उग्र बनाकर प्रलय-काल के मेघ-गर्जन के साथ नाचते हुए मेरे सामने आ जाओ, गहरे अंधेरे में छिपकर बैठ जाओ, तुम्हें जाना हो तो जभी इच्छा हो तभी चले जाना, रहना हो तो अनन्त काल के अक्षयवट की तरह शत योजन शाखा फैलाकर पेचक-कंठ के कटु कलरव में रहना—मैं तुमसे डरता भी नहीं हूँ और न तुम्हारा उच्छेद-साधन ही मेरे जीवन का मूल मन्त्र है। भीषणं भीषणा-नाम्—मेरे सदा के सिद्धि-देवता हैं, वह कोमल कुसुम में भी हँसते हैं, फिर वज्राग्नि से क्षणभर में निष्ठुरता के साथ विश्व-सृष्टि का विनाश भी करते हैं—उन्हें अपने अन्तर में

अपना जानकर मैं शान्त हुआ हूँ, स्निग्ध हुआ हूँ और समाहित हो गया हूँ। भभकते हुए आग के जलने से या गरम तेल के खौलने से मैं अशान्त नहीं होता, अस्थिर नहीं होता और न अधीर ही होता हूँ।'

अन्तर में चुपचाप डुबकी न लगा सकने के कारण अभी हमने सुख-दुःख का अनुभव लेकर अपने मन में चित्तवृत्तियों का विषम संग्राम छेड़कर कुरुक्षेत्र का संहार-समर लगा दिया है और मार-पीट, गुत्थम-गुत्था, हाथा-बाहीं के कोलाहल से धीरज खोकर हम क्लान्त और दुर्बल हो पड़े हैं। जो वायु जिस परिमाण में उष्ण है, वह उसी परिमाण में बहिर्मुख और चञ्चल है, इसलिए वह उसी परिमाण में हल्की है।

चिरानन्द

अन्तर-बाहर जो ओत-प्रोत भाव से विराजमान हैं, उन्हें छोड़कर और कोई भी या कुछ भी चिरानन्द देनेवाला नहीं है। संसार के सुख-दुःख, पाप-पुण्य, शत्रु-मित्र सभी केवल उसी समय चिरानन्द देते हैं जब कि साधक के नेत्रों में उनका अस्तित्व विश्व-सत्ता में विलीन हो जाता है। जो चिरानन्द देनेवाला है वह कभी निरानन्द में परिणत नहीं होता। चिरानन्द में निरानन्द नहीं है। जो शाश्वत नित्य है, क्या उसके क्षणस्थायित्व की कल्पना की जा सकती है?

निरानन्दता मनुष्य के भ्रम की ही सन्तान है। भ्रम से ही वह उत्पन्न होती है, भ्रम में ही बढ़ती है और भ्रम में ही उसका अटूट सिर ऊँचा रहता है। भ्रम के मिट जाने पर वह भी धरती पर लोट जाती है।

कभी भूल न जाऊँ

स्वार्थ का पर्दा जिनके नेत्रों के सामने टंगा हुआ है, दूसरे को वे अपनी सङ्कीर्ण बुद्धि से वेष्टित न कर सकने के कारण मूर्ख कहते हैं, पागल कहते हैं और भी बहुत कुछ कहते हैं। संसार की बहिर्मुख विलासिता को जो नाशवान् समझ सके हैं, भगवान् को जिन्होंने भगवान् के ही कामों में पाना चाहा है, निःसंगता उन्हें क्या डर दिखा सकती है? भगवान् यदि उन्हें न भूलें तो संसार भर के लोगों के उनपर उपेक्षा दिखाने से ही क्या होगा? दुःख-कष्टों से शीर्ण होकर भी मैं भगवान् पर अविश्वास न करूँ। तूषार-शिखर पर ऊषा के स्वर्ण-मुकुट की तरह वे हमारी चिर-दरिद्रता के भीतर भी चिर-उज्ज्वल होकर रहें।

बहुरूपी भगवान

यथार्थ में ही भगवान् विश्वरूपी या बहुरूपी हैं। हमारे सामने वे अनेक बार अनेक रूप धरकर आते हैं, हम उन्हीं के दिये हुए नेत्रों की दीप्ति से उन्हें देखते हैं, उन्हीं की दी हुई

शक्तियों से घट-घट में उनकी उपलब्धि करते हैं। कभी वे हमारे पास वन में विचरने वाले मृगशिशु की तरह हरी-हरी घासों पर नाचते हुए आकर अपने को पकड़वा देते हैं, कभी हम्हीं कण-लोभी पक्षी की तरह उनके हाथ के बिछाये हुए जाल में फँसकर रोने लगते हैं। इसी धड़-पकड़ के भीतर से सृष्टि का वैचित्र्य और वैशिष्ट्य क्रमशः विकसित हो रहे हैं। कभी वे पुण्यरूप में आते हैं—आत्म-प्रसाद के द्वारा हमारे आत्म-विश्वास को सुप्रतिष्ठित करने के लिए, कभी वे अकृतिरूप में आते हैं—तीव्र अनुशोचना की अश्रुधारा से संस्कार-वर्धित अन्ध अज्ञानता को उसकी सारी मलिनताओं के साथ दूर कर देने के लिए। वे हैं कामरूपी, इसीसे वे कामरूप में आते हैं, क्रोधरूप में आते हैं, लोभरूप में आते हैं और हृदय को चकित, मथित, व्यथित करके अपने ही स्नेह-सदन में खींच लेते हैं। फिर वे आते हैं—संयम के शुभ्र चन्दन में, क्षमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना में तथा कर्म के तुमुल झटिका-गर्जन में। वे आते हैं—कल्पना के उच्छ्वसित संगीत में, संगीत की नृत्यमय लहरों में और प्लावन के कूलप्लावी प्रवाह में। वे सुख में आते हैं, दुःख में आते हैं, शोक में आते हैं, सान्त्वना में आते हैं, अभ्युदय में आते हैं, पराजय में आते हैं और आते हैं—जीवन में तथा मरण में।

समाप्त

परम कल्याणीय

श्रीमान् नकुलेश्वर गंगोपाध्याय

नित्यनिरापत्सु :—

प्यारे नकुल,

बंगला सन् १३२६ से १३३४ तक मेरे कृच्छ्रपूर्ण कर्मजीवन का इतिहास केवल तुम्हीं जानते हो। तुम्हीं उस समय थे मेरे विश्वस्त सहयोगी और नित्य-साथी—मेरे परिश्रम का भाग, उपवास का अंश द्विधा-रहित होकर तुमने सानन्द ग्रहण किया था, समभाव से लिया था। इस ग्रन्थ के द्वारा आज तुम्हारे ऊपर उस दिन की स्मृति से स्नेहाशीर्वाद का वर्षण कर रहा हूँ। इति—

पहली वैशाख
१३५३ वंगाब्द
(१६४६ ई०)

आशीर्वादक
स्वरूपानन्द

प्रिंटर— ब्रह्मचारी स्नेहमय,
अयाचक आश्रम प्रिंटिंग वर्क्स्,
डी ४६।१६ए, स्वरूपानन्द स्ट्रीट, रामापुरा, बनारस।

अभिमत

'देश' (बंगला साप्ताहिक) ने लिखा है—'कर्मेर पथे' पुस्तक का अष्टम संस्करण ही अपनी प्रसिद्धि का परिचय देता है। इसके उपदेश तथा आलोचना में सर्वत्र मनुष्यत्व-प्रतिष्ठा का मन्त्र उद्‌गीत हुआ है। बलिष्ठ चरित्र गठित करने के लिए ये हृदय में अमोघ वीर्य का सञ्चार करते हैं।

'युगान्तर' (बंगला दैनिक) ने लिखा है—लिरिक कविता के उच्छल प्राण-स्रोत से स्रावित यह अन्तर-भाषण साहित्य में दुर्लभ वस्तु है। व्यवहारिक जीवन की प्रतिनियत कर्मव्यस्तता में इसका सरल सतेज आशावाद जीवन-संगी का काम करेगा। स्वामीजी का यह जीवन-वेद स्वदेश-वासियों को व्यक्तिगत स्वार्थ-बुद्धि मिटा कर मन में समष्टि-बुद्धि की प्रतिष्ठा में अनुप्राणित करेगा तथा देश और जाति की सेवा में ही सबको संलग्न करेगा।

'वसुमती' (बंगला दैनिक) ने लिखा है—इस ग्रन्थ के प्रच्छद पर ही लिखा है :—'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः, भिक्षायां नैव नैव च।' महात्माओं की इस प्रकार की उक्तियों को स्वामीजी ने ग्रन्थ के आदर्श रूप से केवल प्रच्छद पर ही उद्‌धृत नहीं किया है, ग्रन्थ के सर्वत्र ही उसका परिचय दिया है। इसके छोटे-बड़े विविध परिच्छेदों में अनेक ज्ञानगर्भ उक्तियाँ हैं, जिनका मूल्य चिरकाल तक स्वीकृत होगा। वर्तमान समय में इस ग्रन्थ का सर्वत्र पठन-पाठन होना आवश्यक है।

अखण्ड-संहिता

"अखण्ड-संहिता या श्रीश्रीस्वामी स्वरूपानन्द परमहंस देव की उपदेश-वाणी" नामक भारत-विख्यात महाग्रन्थ ने भारत के धर्म-साहित्य में युगान्तर उत्पन्न कर दिया है। जीवहित में समर्पित-प्राण, निष्काम तपस्वी ने वर्षों तक पथ-भ्रान्त को पथ दिखाने, दुर्बल को बल देने, संशयाच्छन्न को निःसंशय करने, समस्याकुल चित्त में समाधान की प्रसन्न रश्मि विकीर्ण करने तथा संसार-दाव-दग्ध का ताप प्रशमित करने के लिए जो अमृत-मय उपदेश दिये हैं, 'अखण्ड-संहिता' उनका धारावाहिक संकलन है। जीवन के जितने जटिल प्रश्न हैं उनकी मीमांसा इस महाग्रन्थ के किसी न किसी स्थान में मिलेगी। विभिन्न सभाओं में या एकान्त में वे जलद-गम्भीर स्वर से जो चित्तमोहनकारी अपूर्व प्राणस्पर्शी उपदेश दिया करते थे उन्हीं का एकत्र समावेश इसमें है। जिस प्रकार के गोपनीय निगूढ़ परन्तु अत्यन्त प्रयोजनीय विषयों की समस्या का समाधान अबतक किसी धर्मग्रन्थ में नहीं दिखाई पड़ता था वैसे शत-शत विकट समस्याओं की अपूर्व मीमांसा इस ग्रन्थ में है।

प्रथम दो खंडों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। मूल्य प्रत्येक खंड क़ा बारह आने है।